राजकमल विश्व-परिचय-माला

श्रीलंका

[भौगोलिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक परिचय]

स्नेहलता

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

इस पुस्तक-माला का मूल उद्देश्य पाठकों को विश्व के सभी देशों की सामान्य भौगोलिक-सामाजिक जानकारी देना है। विभिन्न महाद्वीपों पर अलग-अलग पुस्तकें प्रकाशित की जा रही हैं।

क्रम

पाक मुहाना
जाफना
मन्नार
त्रिंकोमली
अनुराधापुर
पुत्तलम
सिगिरिया
कैन्डी
कोलम्बो
माउंट लैविनिया
रतनपुरा
गाल

श्रीलंका

१. अतीत की कहानी

लंका के नाम से कौन हिन्दुस्तानी परिचित नहीं है? रावण की स्वर्णपुरी श्रीलंका, जहाँ से श्रीरामचन्द्र ने सीता का उद्धार किया था! पौराणिक गाथाओं में लंका का परिचय राक्षसों की नगरी के रूप में मिलता है, लेकिन इन गाथाओं से भी लंका का सनातन वैभव और अनुपम प्राकृतिक आकर्षण स्पष्ट होता है।

भारत के श्रीराम के लंका पर आक्रमण की कहानी चाहे इतिहास की घटना न हो, उसे पौराणिक गाथाओं का अंग तो माना ही जायगा। भारत के आर्य राजाओं के लंका पर रह-रहकर किये जाने वाले हमलों का वर्णन वहाँ की लोक-गाथाओं और लोक-गीतों में पढ़ने और सुनने को मिलता है। लंका के लिपिबद्ध इतिहास में भी ईसा के लगभग एक हजार वर्ष तक उत्तरी भारत के हिन्दू राजाओं के और अगली पाँच सदियों में दक्षिण भारत के तमिल-भाषी हमलावरों के, १९४८ में श्रीलंका द्वारा स्वतंत्रता-प्राप्ति तक क्रमशः पुर्तगाली, हालैंड-निवासी तथा अंग्रेजों के आक्रमणों और उनकी विजय अथवा पराजय की कहानी कहता है। इन विदेशी आक्रमणों के अनवरत चक्र में ही सिंहल-राज्य और संस्कृति का जन्म हुआ; इस संस्कृति की साक्षी अनुराधापुर, सिंहगिरि या सिगिरिया,

पोलोन्नरुआ, रतनपुरा और कैन्डी में पाये जानेवाले महान् दागब अथवा स्तूपों, दुर्ग-प्रासादों और नगरों के भग्नावशेषों में आज भी देखने को मिलती है; श्रीलंका के भव्य लोक-नृत्यों और मनोहारी दस्तकारियों में इसे आज भी पहचाना जा सकता है।

'लंका' शब्द का ठीक अर्थ क्या है, यह ज्ञात नहीं है। कुछ लोगों का अनुमान है कि इस का अर्थ वैभवपुरी है। अन्य लोगों के अनुसार इस का अर्थ है राक्षसपुरी। उत्तरी भारत के आक्रमणों के साथ आकर जो लोग यहाँ बसे, उन्होंने इसे सिंहल-द्वीप कहकर पुकारा। समय के साथ, अरबी व्यापारियों ने इसें सिहलद्वीप की जगह सेलेदिबा, और फिर सेरेन्दीबा कहा; पुर्तगालियों ने सीलाओ, हालैंड-वासियों ने ज़ीलान और अंग्रेजों ने सीलोन! अपने इतिहास में यूनानी लंका को तप्रोबेन कहा करते थे जो ताम्रपर्णी का अपभ्रंश है; लंका के पुराने भूगोल के अनुसार तम्बपन्नी अथवा थम्बपानी वहाँ के उत्तर-पश्चिमी तट पर स्थित एक जिले का नाम था जहाँ विदेशी व्यापारी आया-जाया करते थे।

लंका की आदिवासी बैद्द जाति का एक युवक

प्रगैतिहासिक काल में भारत और लंका के बीच समुद्र का व्यवधान नहीं था। द्राविड़-पूर्वी आस्ट्रोलायड जाति के यायावर लोग मानव-निकास के उस धुँधलके अतीत में भारत के रास्ते से लंका आए थे;

लंका के आदि-निवासी वैद्द लोग उन्हीं की सन्तान हैं—वैद्द शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के व्याध शब्द से है। ये लोग जंगलों में रहा करते थे और शिकार करना इनका मुख्य धन्धा था।

ज्ञात इतिहास के अनुसार उत्तर भारत से जब सर्वप्रथम लोग लंका में आकर बसे, जिन्होंने इसे सिंहल नाम दिया, तो लंका में नाग और यक्ष दो जातियों के लोगों का निवास था। नाग लोग प्रायः समुद्री तट पर रहते थे और नौकाओं आदि का प्रयोग जानते थे। कुछ मानव-शास्त्रियों का कहना है कि वैद्द यक्ष जाति का ही अंग थे, लेकिन सब विशेषज्ञ उन्हें लंका का मूल आदिवासी मानते हैं।

वैद्द जाति का सर्वप्रथम विदेशी हवाला ईसा के ४०० वर्ष बाद पेलाडियस द्वारा लिखी गयी एक यूनानी पुस्तक में मिलता है। इसमें, लंका तक पहुँचनेवाले थेबा के एक यात्री की कहानी लिखी गयी है, जिसमें इस जाति का उल्लेख 'वेसादे' नाम से हुआ है—नाटे कद के बड़े सिरों और लम्बे बालोंवाले ये शर्मीले लोग "पथरीली गुफाओं में रहते हैं; कठिन पहाड़ों पर बड़ी फुर्ती और तेजी से चढ़ना जानते हैं और झाड़ियों से मिर्च की फलियाँ इकट्ठी किया करते हैं।" सातवीं सदी में चीनी यात्री हुएन त्सांग ने इन्हें यक्खोस (यक्ष) जाति का लिखते हुए कहा कि ये लोग द्वीप के दक्षिण पूर्वी हिस्से में जाकर रहने लगे हैं। ग्यारहवीं सदी में अरबी यात्री अलबरूनी ने भी अपने यात्रा-वर्णनों में इनकी ओर संकेत किया।

लंका का अतीत लोक-कथाओं के चमत्कार-पूर्ण वर्णनों में छुपा हुआ है। प्रसिद्ध चीनी घुमक्कड़ फ़ाहियान ने लिखा है कि इस द्वीप में पहले मनुष्यों का निवास नहीं था; यहाँ राक्षस

ग्रौर दानव ही रहते थे। पास-पड़ोस के व्यापारी यहाँ ग्राकर उनसे ग्रादान-प्रदान ग्रौर परिवर्तन द्वारा व्यापार किया करते थे। यहाँ के निवासी राक्षस ग्रौर दानव इन व्यापारियों के सामने नहीं निकलते थे, वरन् ग्रपनी चीजों के दाम लगाकर ग्रौर खुले में रखकर छुप जाते थे। विदेशी व्यापारी तब ग्रपनी पसन्द की चीजें ले जाते थे ग्रौर बदले में ग्रपने साथ लाई हुई चीजें छोड़ जाते थे।

लंका के पुराने इतिहास के बारे में भारतीय पौराणिक साहित्य में, विशेषतः रामायण में, बहुत कुछ लिखा मिलता है। रोम ग्रौर यूनान के इतिहासकारों की कृतियों में भी इस द्वीप का वर्णन है लेकिन पौराणिक गाथाग्रों ग्रौर किंवदंतियों में से वास्तविक इतिहास को निकाल पाना ग्रासान नहीं है। इस द्वीप का इतिहास बाद में बौद्धों द्वारा महावंश, राजावलीय, दीपवंश, चूलवंश ग्रादि नाम के ग्रंथों में लिपिबद्ध किया गया। इस प्रकार लंका का गत २५०० वर्षों का लिखित इतिहास प्राप्त हो जाता है।

यह इतिहास भगवान् बुद्ध के जन्म के ग्रास-पास के समय से शुरू होता है जब कि ईसा से ५४३ वर्ष पूर्व उत्तरी भारत के एक राजकुमार विजय ग्रपने ७०० योद्धा साथियों सहित लंका के पश्चिमी तट पर पुत्तलम के पास उतरे। राजकुमार विजय ने यक्षों को पराजित किया ग्रौर ग्रपनी राजधानी तमन्ना नुवारा में बनायी। उनके साथी सैनिक ग्रनुराधापुर, उपतिस्स ग्रौर विजितपुर में जाकर बसे।

राजकुमार विजय की ग्रपनी कहानी भी लोककथाग्रों के ग्रनुसार बहुत ग्राश्चर्यजनक है। कलिंग देश की राजकुमारी का

विवाह वंग देश के राजा से हुआ था। उनके एक लड़की पैदा हुई जिसका नाम सुप्पदेवी रखा गया। जन्म के अवसर पर ज्योतिषियों ने घोषणा की कि यह लड़की एक 'सिंह' से सन्तान पैदा करेगी। बड़ी होने पर कन्या परम सौन्दर्यवती निकली।

पिता अपनी इस लाडली बेटी की सुरक्षा के लिए उसे सात-सात गलियारोंवाले महल में बन्द रखा करते थे। लेकिन सुप्पदेवी स्वतंत्र तबीयत की युवती थी। एक रात छद्मवेश में वह महल से निकल गयी और मगध की ओर जानेवाले साधुओं की एक टोली के साथ हो ली।

रास्ते के एक जंगल में एक 'सिंह' ने इस गिरोह पर हमला किया। सुप्पदेवी को 'सिंह' अपनी कन्दरा में ले गया और उसके साथ रहने लगा। वक्त पर सुप्पदेवी ने एक लड़के और एक लड़की को जन्म दिया जिनका नाम उसने सिंहबाहु और सिंहसवती रखा।

१६ वर्ष की आयु के होने पर सिंहबाहु ने अपनी माँ से अपने जन्म की कथा जान ली। वे तीनो तब एक दिन 'सिंह' की अनुपस्थिति में कन्दरा से भाग निकले। लौटने पर 'सिंह' को बहुत क्रोध आया और उसने आस-पास के निवासियों पर हमले करना शुरू कर दिया। वंगदेश के राजा के पताका-वाहक राजकुमार अनुरु का वहाँ राज था; उन्होने सिंह को मारने-वाले को बड़ा पुरस्कार देने की घोषणा की। सिंहबाहु ने तब अपने सिंह पिता को मारने का बीड़ा उठाया और उसमें सफल हुआ। जब वह 'सिंह' का कटा हुआ सिर लेकर वंगदेश को लौटा तो राजा का सात दिन पहले देहान्त हो चुका था। उसकी माँ

तब तक राजकुमार अनुरु को अपना पति मान चुकी थी। सिहबाहु ने अपने इस नये पिता को वंग की गद्दी पर बैठा दिया। सिहबाहु अपनी बहिन सिहसवती को लेकर अपने जन्म-प्रदेश लौट गया।

सिहबाहु की सन्तानों में ज्येष्ठ पुत्र का नाम विजय था। जिस दिन विजय का जन्म हुआ उसी दिन उस प्रदेश में ७ सौ अन्य बालकों का जन्म भी हुआ था। ये सब बड़े होने पर पराक्रमी निकले। जनता विजय और उसके साथियों की दुस्साहसपूर्ण छेड़छाड़ से तंग हो आयी थी और उसने राजा से माँग की कि राजकुमार को प्राणदंड दिया जाय।

लेकिन राजा ने राजकुमार और उसके साथियों के सिर मुँड़वा कर, उन्हे नौकाओं में बैठाकर समुद्र में छोड़ देने की सजा दी। ये नौकाएँ कुछ समय बाद लंका के तट पर जा लगीं।

राजकुमार विजय ने लंका की एक यक्षिणी कुवेणी की सहायता से यक्षों को हराया। कुवेणी से उसने विवाह भी कर लिया।

विजय के पिता सिहबाहु ने 'सिह' को मारा था, इस लिए उसे सिहल—सिह को मारनेवाला—कहकर पुकारा जाने लगा। राजकुमार विजय के नये राज्य का नाम तभी से सिहल पड़ा। राज्यपद सँभालने से पहले राजकुमार विजय ने कुवेणी का त्याग कर के दक्षिण भारत के मजुरा के राजा पांडुआ की राजकुमारी कन्या पांडवा से विवाह सम्पन्न करवाया।

विजय ने लंका पर ३८ वर्ष तक राज्य किया लेकिन उसके राज्य तथा उसके वंश की कहानी हम बाद में पढ़ेंगे।

२. भौगोलिक परिचय

भारत के सुदूर दक्षिण में भारतीय महासागर तथा बंगाल की खाड़ी से घिरा हुआ, मोती के आकार का श्रीलंका का द्वीप स्थित है—पार्क स्ट्रेटस नाम का छोटा-सा समुद्री भाग इन दो देशों को अलग किये हुए है। भारत के दक्षिण में प्वाइंट कालीमीर से लंका के उत्तरी भाग के प्वाइंट पेड्रो नाम के स्थान की दूरी केवल ३६ मील है। इसी थोड़ी-सी समुद्री बाधा के कारण ही यह द्वीप अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाये रख सका है यद्यपि यह दूरी भारतीय संस्कृति के प्रभाव से अलग रहने के लिए पर्याप्त नहीं थी।

दुनिया के नक्शे पर लंका की स्थिति अक्षांश उत्तर की ५°५५ तथा ९°५१ रेखांश और देशान्तर पूर्व की ७९°४१ और ८१°५३ रेखांश बीच है। उत्तर से दक्षिण तक इसकी लम्बाई २७० मील है और चौड़ाई १४० मील। लंका का क्षेत्र-फल २५,३३२ वर्ग मील है।

द्वीप का जलवायु भूमध्य-रेखा के करीब होने के कारण न कभी बहुत गर्म और न कभी बहुत सर्द होता है। ऋतुओं का जैसा नियमित और निश्चित परिवर्तन भारत में होता है, वैसा लंका में नहीं दिखाई पड़ता। पहाड़ी प्रदेशों में तापमान ५०° से ७५° फारन्हाइट रहता है। तापमान का यह फर्क भी

हवाओं के अथवा किसी स्थान के समतल अथवा पहाड़ी प्रदेश में होने के कारण ही होता है।

लंका के ११४० मील लम्बे तट पर समुद्र की लहरें लहराया करती हैं। तट पर अथवा अन्य समतल प्रदेशों का जलवायु अपेक्षाकृत वर्ष-भर एक समान रहता है; तीन-चौथाई से अधिक भाग समतल है।

फिर द्वीप के मध्य में कैन्डी और उसके आस-पास का प्रदेश है जिसकी समुद्रतल से ऊँचाई लगभग १५००-१६०० फ़ीट है। इसके बाद दक्षिण-पूर्व में पहाड़ों की शृङ्खलाएँ हैं जिनकी कुछ चोटियाँ ८ हजार फीट से भी ऊपर जाती हैं। पिदुरुतलगल लंका का सबसे ऊँचा पहाड़ है। इसकी ऊँचाई ८२९२ फ़ीट है। किरिगलपोट्टा (७८५७') कोलापटनहेल (७७५४') टोटागल (७७४१') तथा समनल (७३६०') पहाड़ों की अन्य ऊँची चोटियाँ हैं। समनल को 'एडम्स पीक' भी कहते हैं और लोकविश्वास के अनुसार भगवान बुद्ध ने अपनी एक लंका-यात्रा के दौरान में पहाड़ की इस चोटी पर अपने कदम रखे थे।

लंका में अच्छी-खासी वर्षा होती है; इसकी औसत उत्तर-पूर्व के क्षेत्र में ३५" और दक्षिण-पश्चिम में २००" प्रति वर्ष है। द्वीप के किसी-न-किसी भाग में वर्ष के आठ महीनों में वर्षा होती ही रहती है जो कि उत्तर-पूर्वी और दक्षिण-पश्चिमी मानसूनों के कारण होती है। उत्तर-पूर्वी मानसून का ज़ोर दिसम्बर से फरवरी तक और दक्षिण-पश्चिमी मानसून का ज़ोर जून से अगस्त तक के महीनों में रहता है। पहाड़ी और समुद्रतल से ऊँचे प्रदेशों को दोनों मानसूनों से लाभ

पहुँचता है। उत्तर के समतल और अन्य सूखे क्षेत्रों में वर्षा पड़ने की औसत बहुत कम है लेकिन नमी फिर भी काफी हो जाती है जिससे खेती आदि को थोड़ी मदद मिल जाती है।

बरसात के हिसाब से वर्ष के चार भाग इस प्रकार किए जा सकते हैं (१) दक्षिण-पश्चिमी मानसून का समय—जो मई से सितम्बर तक रहता है। इन महीनों में वर्षा द्वीप के अधिकतर दक्षिण-पश्चिम के एक-चौथाई भाग पर पड़ती है, (२) दक्षिण-पश्चिमी मानसून तथा अगली मानसून के बीच का अक्तूबर और नवम्बर का समय, (३) उत्तर-पूर्वी मानसून का समय जो दिसम्बर से फरवरी तक रहता है। द्वीप के उत्तरी तथा पूर्वी क्षेत्रों में इन दिनों भारी वर्षा पड़ती है, और पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों में शाम के वक्त प्रायः बिजली और कड़क के साथ पानी गिरता है। (४) उत्तर-पूर्वी मानसून के बाद का अगली मानसून के आने तक का मार्च तथा अप्रैल का समय।

भौगोलिक दृष्टि से द्वीप को चार क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है : अत्यन्त शुष्क, शुष्क, गीला और पहाड़ी क्षेत्र। अत्यन्त शुष्क क्षेत्र दक्षिण-पूर्वी और उत्तर-पश्चिमी समुद्र-तट के साथ फैला हुआ है। यह भूमिभाग प्रायः रेतीला मैदान है, जहाँ पेड़-पौधे नहीं उगते और वर्षा नहीं होती। इस प्रदेश में जो खंडहर मिलते हैं, उनसे पता चलता है कि प्रागैतिहासिक काल में कभी मनुष्य यहाँ बसा करते थे। इस प्रदेश की मुख्य पैदावार नारियल ही है।

सूखे क्षेत्र में वर्ष में कुछ समय के लिए पानी गिरा करता है। इस क्षेत्र में लंका के गर्म देशों में पाये जानेवाले जंगल

मिलते हैं और इन जंगलों में हाथी, चीता, भालू जैसे जानवर। इन जंगलों से लकड़ी काटी जाती है। इस प्रदेश में बसने और पनपनेवाली पुरातन सभ्यताओं के चिन्ह और अवशेष आज भी देखने को मिलते हैं।

लंका के मध्य के और दक्षिण-पश्चिम भाग को गीला क्षेत्र कहा जाता है जहाँ उष्ण-कटिबन्धीय वर्षा का जोर रहता है। इस प्रदेश का तापमान भी अधिक रहता है और साल-भर पानी गिरता रहता है। इस प्रदेश में चाय और रबर के विशाल बगीचे हैं जो कि द्वीप की मुख्य उपज हैं।

मध्य में पहाड़ी क्षेत्र है जिसमें पहाड़ी जंगल स्थित हैं। पहाड़ों में समतल प्रदेश की गर्मियों से बचने और सैर आदि के लिए सुन्दर शहर बसे हुए हैं।

लंका में कुल मिलाकर १०३ नदियाँ ऊँचे क्षेत्रों से निकलकर चारों ओर के समुद्री तट की ओर बहती हैं। इनमें से कुछ बड़ी नदियाँ समतल प्रदेश की खेती-बारी में विशेष रूप से सहायक सिद्ध होती हैं। सब से बड़ी नदी का नाम महावेल्ली गंगा है और अपने स्रोत से द्वीप के पूर्व के समुद्र में विलीन हो जाने तक इसे २०६ मील की लम्बी यात्रा करनी पड़ती है। इस नदी द्वारा पहाड़ों से बहाकर लाई हुई उपजाऊ मिट्टी काफी बड़े कृषि-क्षेत्र को फायदा पहुँचाती है। अन्य मुख्य नदियों के नाम ये हैं: अरुवी अरू—१०४ मील, काला ओया—९७ मील, यान ओया—९४ मील, केलानी गंगा—९० मील।

इस द्वीप के मुख्य शहर हैं: **कोलम्बो**, जो कि द्वीप के पश्चिमी दक्षिणी तट पर बसा है और अंग्रेजों के वक्त से इस देश की राजधानी भी रहा है। आज इसकी आबादी साढ़े चार लाख

को है और यह लंका का सब से बड़ा शहर है। कोलम्बो ही लंका का मुख्य बन्दरगाह है। उत्तर में जाफ़ना नाम का नगर है जो कि बन्दरगाह भी है। मध्य में **कैन्डी**, जो कि सिंहल राजाओं की अन्तिम राजधानी थी, और जो अपने चाय के बगीचों के लिए प्रख्यात है। दक्षिण में **गाल** जो लगभग १८६० तक लंका का मुख्य बन्दरगाह रहा; दक्षिण-पूर्व में **मौंट लैविनिया** जो कि कोलम्बो से ८ मील की दूरी पर समुद्र के तट पर स्थित एक मनोरम सैरगाह है। पूर्व में **त्रिंकोमल्ली** जो कि अंग्रेजों के शासन के दिनों में भारतीय महासागर में नौ-सेना का अड्डा रहा है और प्राकृतिक बन्दरगाह है। **अनुराधापुर** द्वीप के मध्य से उत्तर-पश्चिम में स्थित है और यहाँ सिंहलियों की पुरानी राजधानी हुआ करती थी। आज लोगों और शासन के उत्साह और योजना से नया अनुराधापुर फिर से बनाया और बसाया जा रहा है।

मुख्य पहाड़ी नगर **नुवारा इलिया** और **भन्डारवेला** हैं।

३. जन-परिचय

१६५६ की जनगणना के अनुसार श्रीलंका की आबादी ६२ लाख ७५ हजार थी। १८७१ से जनसंख्या में तीनगुणा वृद्धि हुई है, और पिछले ५० वर्षों में दुगुनी। आबादी का दबाव सबसे अधिक राजधानी कोलम्बो और उसके आस-पास के क्षेत्र में है, जहाँ कि एक वर्गमील में बसनेवाले लोगों की संख्या १००० से अधिक है। उत्तर में स्थित जाफना तथा दो अन्य ज़िलों में आबादी का दबाव सब से कम है; एक वर्ग-मील में ५० से भी कम व्यक्ति इस क्षेत्र में रहते हैं।

लंका में जनसंख्या की वृद्धि प्रायः उसी तेज़ी से हो रही है जैसी की एशिया के अन्य देशों में। स्वास्थ्य तथा चिकित्सा संबंधी एवं शिक्षा की सार्वजनिक प्रगति से जहाँ मृत्यु का अनुपात गिर रहा है, वहाँ जन्म के अनुपात में पिछली आधी सदी में कोई अवनति नहीं हुई। १६४७ के बाद से लंका में मृत्यु का अनुपात पश्चिमी देशों के प्रायः समान, १००० के पीछे केवल १०, हो गया है लेकिन जन्म का अनुपात १००० के पीछे ३६ है! १६०७ में १००० के पीछे मृत्यु का अनुपात ३०·७ था और जन्म का १००० के पीछे ३७·६; फल-स्वरूप प्रकृति के क्रूर तरीके जनसंख्या को तेजी से बढ़ने नहीं देते थे। पश्चिमी देशों में जनसंख्या की प्रतिशत वृद्धि की

औसत १८२० में १'१५, १८६० में ०'६८, १६२० में ०'६० तथा १६४० में ०'७० थी, और निरन्तर गिर रही है। आर्थिक खुशहाली, औद्योगिक सम्पन्नता और शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ देखा गया है कि जन्म का अनुपात गिर जाता है लेकिन खुशहाली और शिक्षा के उस स्तर तक अभी शायद एशिया के देश नहीं पहुँचे जब कि वे जनसंख्या की वृद्धि पर सफलता से कोई नियंत्रण कर सकें। लंका में आबादी बढ़ने की गति भारत की गति से दूनी से भी अधिक है। एशिया के देशों में जनसंख्या की प्रतिशत वृद्धि (१६५३-५७ में) का हिसाब इस प्रकार है :

लंका	३'६	भारत	१'३
मलय	२'५	जापान	१'२
इन्डोनेशिया	१'७	बर्मा	१'०
पाकिस्तान	१'४		

इंग्लैंड और अमेरिका में आबादी का यही अनुपात क्रमशः ०'४ तथा १'८ है।

जिस गति से लंका में आबादी में वृद्धि हो रही है, अनुमान है कि उस हिसाब से वहाँ की पहली दसवर्षीय योजना के अन्त तक १६६८ में आबादी की संख्या १ करोड़ ३४ लाख के लगभग हो जायगी। एशिया के अन्य देशों के समान लंका के सामने भी यह प्रश्न गंभीरता के साथ प्रस्तुत है कि इस बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण-पोषण, शिक्षा-दीक्षा और काम-काज की व्यवस्था कैसे की जाय।

लंका की आबादी में जातीय विश्लेषण के अनुसार मैदान के सिंहली, कैंडी-क्षेत्र के सिंहली, लंका के तमिल लोग, भारत के तमिल लोग, मूर लोग, बर्घर लोग, मलय लोग तथा वैद्द, किन्नर और

रोडिया नाम के आदि-जातियों के लोग रहते हैं। लंका की अपनी तमिल आबादी उत्तर, उत्तर-मध्य तथा पूर्वी प्रदेशों में रहती है और ये उन लोगों की संतान हैं जो कभी दक्षिण भारत से आकर लंका में बस गये थे। भारतीय तमिल जनता प्रायः चाय और रबर के बड़े बगीचों में मज़दूरी का काम करती है और वहाँ के नागरिकता के अधिकार उसे प्राप्त नहीं हैं। विभिन्न जातियों का कुल जनसंख्या में अनुपात का हिसाब यह है :

मैदानवासी सिंहली	४८·८५%
कैन्डी-क्षेत्र के सिंहली	३०·४२%
लंका के तमिल	१२·८१%
लंका के मूर	६·६०%
बर्घर	·६२%
मलय	·४१%
अन्य	·२६%

इस प्रकार लंका के तीन-चौथाई से अधिक वासी सिंहली हैं। ये उन लोगों की सन्तान हैं जिन्होंने प्रागैतिहासिक काल की आदि-जातियों के बाद लंका को बसाया था। 'सिंह' की हत्या करनेवाले, भारत से विजय नाम के युवराज के साथ यहाँ आये पहले ७०० उत्तर-भारतीय आर्य ही इस जनता के मूल हैं। इनकी भाषा भी सिंहली है जो कि भारोपीय भाषाओं की एक शाखा है और जिसमें संस्कृत और पाली के काफी शब्द मिलते हैं। कभी सिंहली ब्राह्मी अक्षरों में ही लिखी जाती थी। लंका में समय-समय पर विदेशी आक्रमणों और विदेशियों के यहाँ बस जाने के परिणामस्वरूप सिंहलियों में, जैसा कि ऐसी परिस्थितियों के अन्य देशों में भी, काफी जातीय सम्मिश्रण

देखने को मिलता है, विशेषतः बाद में दक्षिण भारत से आने-वाले तमिल लोगों के रक्त के साथ ।

तमिल लोगों का लंका आना-जाना हमेशा बना रहा है और दक्षिण भारत के तमिल राजा रह-रहकर द्वीप पर आक्रमण करते रहते थे। काफ़ी अरसे तक तमिलियों का आधिपत्य लंका में रहा ।

लंका के मूर उन अरब व्यापारियों की संतान हैं जो हजार-बारह सौ वर्ष पहले यहाँ से व्यापार करने आया करते थे और फिर लौटे नहीं। इसी प्रकार बर्घर लोग हालैंड के उन निवासियों की सन्तान हैं जो हॉलैंड के लंका पर शासन के दिनों में स्थानीय स्त्रियों से विवाह करके यहीं बस गये। शिक्षा में समुन्नत होने के कारण अपनी जनसंख्या के हिसाब से कहीं अधिक इनका प्रभाव यहाँ रहा है ।

जिन-जिन विदेशी जातियों ने लंका पर आक्रमण किया अथवा जो व्यापार के लिए यहाँ आये और यहीं बस गये, उन्हीं की संतान हमें सिंहलियों, तमिलियों, मूर तथा बर्घर लोगों में देखने को मिलती है। इन विदेशियों ने अपना-अपना धर्म भी इस द्वीप में प्रचारित किया, यद्यपि लंका में आने के प्रायः २०० वर्ष बाद आर्यमूल सिंहलियों ने बौद्ध धर्म को अप-नाया था। लंका की जनसंख्या का सब से अधिक भाग बौद्ध है, ६४·४२% लोग बुद्ध के अनुयायी हैं। हिन्दुओं का अनुपात १९·९३% है और ये तमिल-भाषी हैं। ईसाइयों की संख्या ८·८३%, मुसलमानों की ६·६९% तथा अन्य की ०·१३% है ।

४. आर्थिक और औद्योगिक परिचय

श्रीलंका के ८५% लोग ग्रामों में रहते हैं; वे अपने जीवन का निर्वाह खेती-बारी के आसरे करते हैं लेकिन फिर भी द्वीप के लिए आवश्यक खाद्यान्नों के आधे से अधिक भाग के लिए उन्हें आयात पर आश्रित रहना पड़ता है। लोगों का इष्ट भोजन चावल है और चावल की खेती १९५७ में १० लाख ४८ हजार २२८ एकड़ों पर की गई। इसी वर्ष चावल की निजी उपज के अलावा, द्वीप की शेष ज़रूरत को पूरा करने के लिए २५ करोड़ ४९ लाख रुपयों का चावल बाहर से मँगवाना पड़ा—आयात की गई खाने-

भारत के ग्रामों की तरह अनाज और भूसे को अलग करते हुए लंका के ग्राम-निवासी
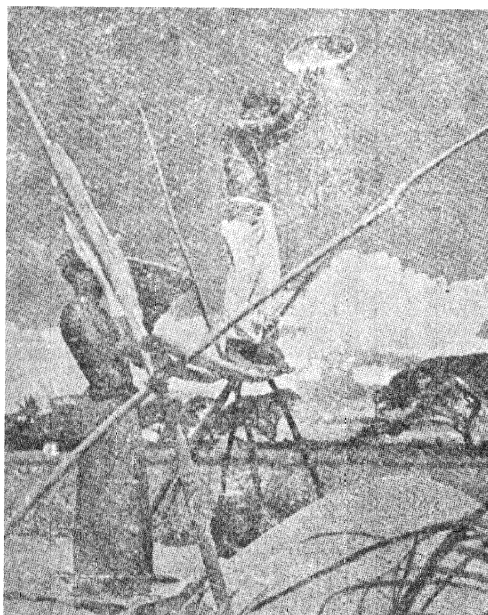
पीने और फल-सब्जियों का यह ३९% भाग था। खाद्यान्नों के आयात करने की यह दशा आज के भारत की स्थिति से कुछ मिलती-जुलती है। लंका भी इस बात की बहुत कोशिश में है कि अपने लिए आवश्यक चावल की खेती अपने देश में ही की जाय ताकि विदेशी मुद्रा अधिक उपयोगी मशीनरी आदि के आयात में खर्च की जा सके।

लंका में भारत की तरह खेती-बारी पुराने तरीकों और औजारों से की जा रही है, जापान या पश्चिम में पाये जाने-

खेती पकने पर भैंसों का प्रयोग। लंका में गाय-बैल की जगह भैंसों से काम लेने का अधिक रिवाज है।
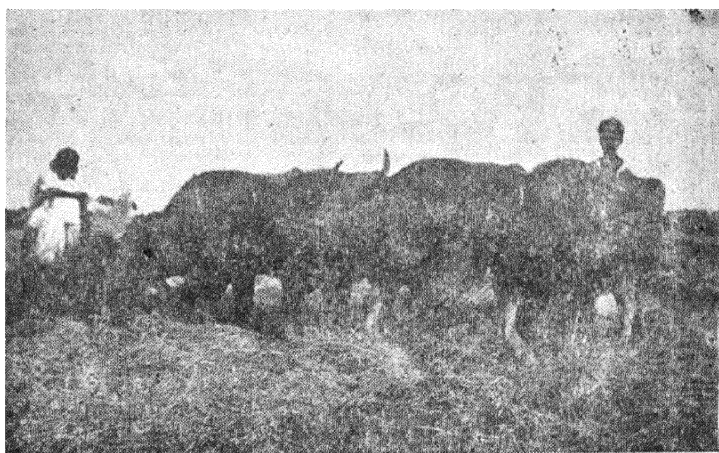
वाले आधुनिक तरीकों से नहीं। ज़मीन को जोतने और फसल को काटने में जानवरों का इस्तैमाल किया जाता है। खेती की उपज के कम होने का मुख्य कारण यही है।

लंका में खेती-बारी एक तो खाने-पीने की चीजों की होती है, और दूसरी मूल्यवान निर्यात और बिक्री-योग्य चीजों की। लंका में बड़े-बड़े बगीचे लगाकर चाय, रबर और

नारियल की विशेष रूप से खेती की जाती है जिसका यहाँ की अर्थ-व्यवस्था में विशेष महत्त्व का स्थान है। इन चीजों को बिक्री
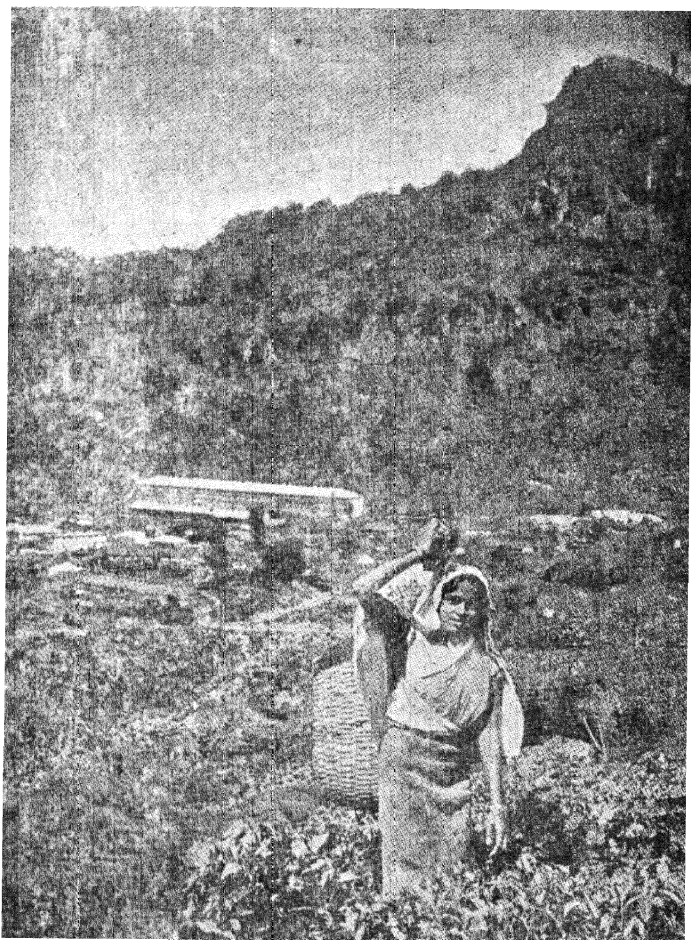
चाय का एक बड़ा कारखाना और चाय की पत्तियाँ
इकट्ठी करनेवाली एक मजदूरिन।

लायक रूप देने के लिए जनता को अन्य छोटे-मोटे धन्धे भी करने को मिल जाते हैं। चाय, रबर और नारियल के निर्यात

की आय का भाग लंका की राष्ट्रीय आय में ३५% से ४०% तक आता है। कृषि की उपज का राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में इस प्रकार का स्थान एशिया के देशों में मलय को छोड़कर अन्य कहीं नहीं पाया जाता।

१९५७ में ३९ करोड़ ८० लाख पौंड चाय की, २२ करोड़ पौंड रबर की तथा २ अरब ९ करोड़ अदद नारियलों की लंका में पैदावार हुई। लंका में इन तीन चीजों की प्रति एकड़ औसत उपज का हिसाब इस प्रकार है। चाय—७११ पौंड, रबर ३७५ पौंड तथा नारियल २१५० अदद। आज की उपज के हिसाब से इस पैदावार के लिए चाय की खेती के एक एकड़ पर मजदूरी की १.१ इकाई, रबर पर .३९ इकाई तथा नारियल की खेती के एक एकड़ पर .०८ मजदूरी की इकाई लगती है।

कृषि के लिए लंका में कुल मिलकर लगभग १ करोड़ ६० लाख एकड़ भूमि प्राप्त है जिसमें से ४८ लाख एकड़, अर्थात् ३०% द्वीप के गीले क्षेत्र में है जहाँ कि काफ़ी बरसात रहती है। चाय, रबर और नारियल की, और चावल की ४०% खेती पानी की इसी प्राकृतिक सुविधा के क्षेत्र में की जाती है। सूखे क्षेत्र में लगभग १ करोड़ २२ लाख एकड़ भूमि प्राप्त है। इसके लिए सिंचाई के अप्राकृतिक साधनों की आवश्यकता होती है और १९५७ तक केवल ५ लाख एकड़ भूमि के लिए ही नहरों आदि द्वारा सिंचाई का प्रबन्ध हो सका है।

१९५७ में लंका की मुख्य विभिन्न पैदावारों के लिए जितनी एकड़ जमीन बरती गयी, उसका ब्यौरा इस प्रकार है :

समुद्र-तट पर नारियल के पेड़

चाय	५,७२,००८ एकड़
रबर	६,५७,४२७ एकड़
नारियल	१०,७०,६४२ एकड़
चावल	१०,४८,२२८ एकड़
कोको	५०,००० एकड़

चाय की उपज में लंका का स्थान विश्व-भर में भारत के बाद का ही है। चाय के बगीचों का प्रबन्ध बड़ी-बड़ी कम्पनियों के हाथ में है जिनमें काफी अंग्रेजी पूँजी लगी हुई है। रबर की

उपज में लंका का दुनिया के देशों में तीसरा स्थान है ; मलय और डच ईस्ट इन्डीज़ ही लंका से अधिक रबर की पैदावार करते हैं। रबर के बगीचों में ४०% पूंजी अंग्रेजों की लगायी हुई है। १९वीं सदी में कॉफ़ी के बगीचे लगाने के लिए भूमि को हथियाने की होड़-सी लग गयी थी और बड़े-बड़े जंगल, और सैकड़ों गाँव कॉफ़ी की खेती के लिए बरबाद और काट-छाँट दिये गये थे। लेकिन आज द्वीप से कॉफ़ी की खेती का प्रायः लोप ही हो चुका है।

हमारे इस पड़ोसी द्वीप की सबसे बड़ी आर्थिक समस्या अपना खाने-पीने का सामान द्वीप में ही उपजाने की है।
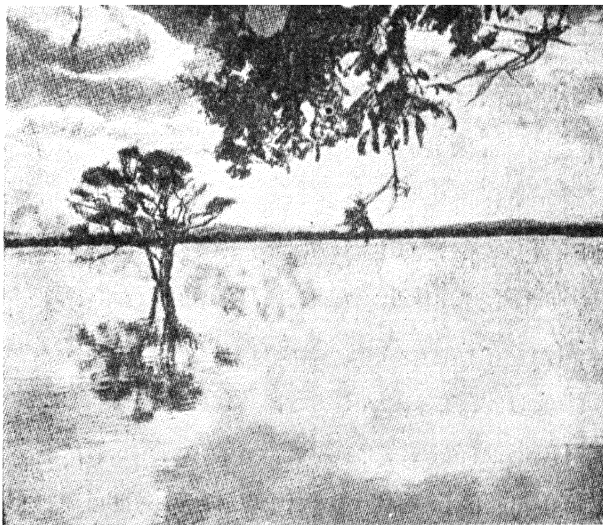
प्राचीन काल के सिंचाई के लिए बनाये गये तालाब
का एक चित्र

सिंहली और तमिल राजाओं के काल में सूखे क्षेत्रों की सिंचाई का प्रबन्ध बड़े-बड़े अप्राकृतिक तालाब बनाकर और उनमें

जमा किये गये पानी का जरूरत पर प्रयोग करके किया जाता था, लेकिन सिंचाई की यह व्यवस्था धीरे-धीरे बिखर गयी। आज स्थिति यह है कि लंका की खेती-बारी के दो-तिहाई क्षेत्र का विकास नहीं हो पाया है और खाने के लिए आधे से अधिक भाग, जैसा कि देख चुके हैं, का आयात करना पड़ता है। १९५७ में लंका में जितना आयात हुआ, उनका ४२% खेती-बारी की उपज, दूध और मांस की चीजों का था।

इस कृषि-प्रधान देश को ५५ लाख रुपयों के मांस और अन्य संबंधित चीजों का, ३४ करोड़ ६४ लाख रुपयों का चावल और अन्य अन्नों का, ४ करोड़ ५६ लाख रुपयों की कॉफ़ी, चाय, कोको, मसाले और अन्य पेयों का, ६ करोड़ २९ लाख रुपयों का दूध और दूध की बनी अन्य चीजों का, ४ करोड़ ४३ लाख रुपयों के फल और सब्जियों का, १ करोड़ ८९ लाख रुपयों की बीड़ी, सिगरेट और तम्बाकू का, ८ करोड़ ४१ लाख रुपयों की मछली और ८ करोड़ ४१ लाख रुपयों की चीनी और चीनी की चीजों का आयात करना पड़ा!

खाने-पीने की इन चीजों के अतिरिक्त लंका मुख्यतया सूती धागे, मिट्टी के तेल और पेट्रोल, शराब और स्पिरिट, मोटर गाड़ियों और लारियों तथा खाद का आयात करता है। सब से अधिक आयात इंग्लैंड से किया जाता है, फिर क्रमशः भारत, आस्ट्रेलिया और सिंगापुर से। भारत से किये गये आयात का मूल्य १९५३ में २० करोड़, १९५४ में १९ करोड़ १३ लाख और १९५५ में २४ करोड़ २० लाख रुपये था।

लंका से मुख्य निर्यात, चाय, रबर, प्लम्बेगो या ग्रैफाइट, सुबूत कटे तथा कुतरे हुए नारियल तथा नारियल के तेल, मिर्च

ग्रौर इलायची का किया जाता है। सब से अधिक निर्यात इंग्लैंड को, फिर ग्रास्ट्रेलिया तथा कैनाडा को किया जाता है। भारत को १९५३ में ४ करोड़ ७ लाख, १९५४ में ६ करोड़ ४८ लाख तथा १९५५ में ७ करोड़ ७६ लाख रुपयों का निर्यात किया गया।

लंका की ग्रार्थिक व्यवस्था में नयी परिस्थितियों के ग्रनुसार परिवर्तन, तथा कृषि ग्रौर उद्योग में संतुलन लाने के लिए एक दस-वर्षीय योजना बनाई गयी है। योजना बनाने वाली समिति की स्थापना १९५६ में की गयी थी; इस समिति की रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी है। योजना का काल १९५९ से १९६८ तक का है। इस दस वर्षीय योजना के उद्देश्य हैं :

(१) बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए काम जुटाना, वर्तमान बेकारी को कम करना। जिस गति से लंका की ग्राबादी बढ़ रही है, ग्रनुमान है कि योजना के ग्रन्तिम वर्ष में यह १ करोड़ ३३ लाख ५१ हजार हो जायगी।

(२) विदेशी ब्यापार में ग्रायात की निर्यात से ग्रधिकता को कम करना ग्रौर इस प्रकार विदेशी मुद्रा को बचाना।

(३) लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा करना।

(४) लंका की ग्रर्थ-व्यवस्था में ऐसी विभिन्नता लाना ताकि बाह्य परिवर्तनों ग्रौर विदेशी संबंधों से वह कम प्रभावित हो सके।

(५) राष्ट्रीय ग्राय के ग्रधिक न्यायपूर्ण ग्रौर संगत बँटवारे को समर्थन देना।

श्रीलंका की राष्ट्रीय ग्राय की ग्रौसत १९५७ में प्रति व्यक्ति के लिए ४९२ रुपये थी; दस-वर्षीय योजना के परिणाम-स्वरूप ग्राशा है कि १९६८ में यह प्रति व्यक्ति के लिए ६६७ रुपये

हो जायगी। १९५३-५४ की औसत के अनुसार एशिया के कुछ अन्य देशों में प्रति व्यक्ति की वार्षिक आय की औसत का हिसाब निम्न प्रकार था :

लंका (५७)	४९२
इंडोनेशिया	४४८
भारत	२६८
पाकिस्तान	३४१
जापान	८६७
मलय (५२-५३)	१५६२

इस द्वीप में केवल ५७·१% लोगों को कृषि, जंगलों की लकड़ी आदि काटने में तथा मछली पकड़ने के धन्धे से रोजगार मिलता है। निर्माण करनेवाले और खनिजों से उत्पादन करनेवाले उद्योगों में केवल ८·६% लोग लगे हैं। देश की कुल उपज का ५४·४% भाग कृषि आदि से तथा ७·६% भाग उद्योगों से आता है। इसकी तुलना में भारत को देखिए यहाँ कृषि आदि में (५१ में) ७०·६% लोग लगे थे जब कि देश की कुल उपज में कृषि का भाग केवल ५०·७% था। उद्योग ९·५% लोगों को रोजगार देते थे और देश की समूची उपज में उनका १६·९% अंश था। जापान में (५६ में) कृषि आदि में ४१·२% और उद्योगों में १९·२% लोगों को रोजगार प्राप्त है जब कि देश की उपज में इस रोजगार के परिमाण का भाग क्रमशः १८·५% और २८·३% है। इंगलैंड में (५१ में) केवल ४·९% लोग कृषि आदि में तथा ४१·२% लोग उद्योगों के धन्धे में खपे हुए थे और घरेलू राष्ट्रीय उपज में इनके भाग का अनुपात क्रमशः ५·७% तथा ·४३% था।

एशिया के अन्य देशों की तरह लंका की योजना का उद्देश्य भी कृषि आदि पर पड़े हुए इस भारी बोझ को कम करना है तथा अधिक-से-अधिक लोगों को उद्योगों में काम दिलाना है। यहाँ की कृषि की मुख्य पैदावारों—चाय, रबर और नारियल—को प्रयोग के लायक बनाने से संबंधित छोटे-मोटे उद्योग भी चलाने पड़ते हैं जिनमें लोगों को कुछ समय के लिए काम-धन्धा मिलता है—लेकिन इन उद्योगों की गिनती वस्तुओं का निर्माण करनेवाले बड़े उद्योगों में नहीं की जाती।

लंका में उन चीजों के निर्माण करनेवाले उद्योगों के लिए काफ़ी अवसर है जिनका प्रयोग कि आम जनता करती है। १९५७ में उद्योगों से निर्मित जिन वस्तुओं का इस देश में प्रयोग किया गया, उसमें से ८५% का आयात हुआ था, और केवल १५% ही अपने देश में बनायी गयी थीं।

औद्योगिक वस्तुओं का आयात भी बड़े परिमाण में होता है। १९५७ में आयात की गयी वस्तुओं का व्यौरा और मूल्य निम्न प्रकार था :

खेती के लिए रासायनिक खाद	७०'२	लाख रुपये का
रसायन	२०'५	"
पेट्रोल और उसकी बनी चीजें	१,२८'४	"
कपड़ा	१,९०'३	"
कागज	३६'८	"
लोहा और लोहे की चीजें	८३'६	"
सीमेंट	२७'७	"
यातायात के साधन	१,१०'०	"
मशीनरी आदि	४८'६	"

अन्य विविध चीजें   २,७४'७ "

इनमें से अनेक वस्तुएँ लंका में ही बनाकर, जैसे खाद, कपड़ा, कागज, सीमेंट आदि, विदेशी मुद्रा की काफ़ी बचत की जा सकती है। दस-वर्षीय योजना के अनुसार इस दिशा में विशेष ध्यान दिया जा रहा है। विदेशी व्यापार की वर्तमान स्थिति यह है कि ७०'६% केवल उपभोग की वस्तुओं का ही आयात होता है; केवल २९'४% आवश्यक मशीनरी तथा अन्य वस्तुओं का। इस स्थिति को बदलने के अब सुनियोजित प्रयत्न आरंभ किये गये हैं।

दस-वर्षीय योजना के अनुसार देशी उद्योगों में इस समय लगी हुई पूँजी में १९६८ तक बहुत वृद्धि हो जायगी। बड़े और छोटे तथा कुटीर उद्योगों में योजना के दस वर्षों की अवधि में पूँजी की वृद्धि ७३६%, बिजली के निर्माण में ९६%, यातायात में १२९% तथा सार्वजनिक निर्माण आदि में ७७५% की जायगी। १९५७ में कृषि तथा मछली के धन्धे में देश में खपी हुई कुल पूंजी का कुल २७'४% भाग ही लगा था, तथा उद्योगों और बिजली के निर्माण में १५'१%। योजना के अन्त में, १९६८ में यह अनुपात क्रमशः २२'५% तथा २७'३% हो जायगा, अर्थात् कृषि में लगी हुई पूंजी अपेक्षाकृत कम तथा उद्योगों और बिजली के निर्माण में प्रायः दुगुनी हो जायगी।

भारत की तरह लंका में कुछ ऐसे उद्योग निर्धारित कर दिये गये हैं जो कि केवल सार्वजनिक—सरकारी—क्षेत्र में रहेंगे। सिंचाई की योजनाओं तथा बिजली के निर्माण में व्यक्तिगत पूंजी नहीं लगाई जा सकेगी। अन्य क्षेत्रों में सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत पूंजी साथ-साथ लगाई जा सकती है।

जिस वृद्धि का अनुमान लगाया गया है, उसका खाका १९५७ में प्रचलित मूल्यों के अनुसार इस प्रकार है :

	१९५७	१९६८	वृद्धि (दस लाख रुपयों में)	% वृद्धि
चाय	१०७५	१३९२	३१७	२९
रबर	३३८	४५३	११५	३४
नारियल	३४२	४६९	१२७२७	३७
चावल	३५०	८५७	५०७	१४५
कृषि की अन्य उपजें	५६५	११५३	५८८	१०४
मछली	३४	१७६	१४२	४१८
उद्योग	३८०	१२९०	९१०	२३९
सार्वजनिक निर्माण	२१४	८०३	५८९	२५७
बिजली	२०	१२०	१००	५००
यातायात	२५८	४६६	२०८	८१

१९६८ तक कृषि की उपज की निजी आवश्यकता ८९% तक, मछली आदि की ८६·७% तथा औद्योगिक वस्तुओं की ४०·१% तक लंका में ही पूरी होने लगेगी। कृषि की पैदावारों में चीनी, मिर्च, प्याज, तम्बाकू, कॉफ़ी, अंडों, धातुओं आदि के आयात की कतई जरूरत नहीं रहेगी; कपास की खेती में भी काफ़ी तरक्की हो चुकेगी ताकि कपड़े का उत्पादन देश में ही हो सके। मछली पकड़ने के तरीकों को यंत्र लगी नौकाओं का प्रबन्ध कर के आधुनिक किया जा रहा है। कांकेसन्तुराई के

लंका के मछुआरे

सीमेंट के कारखाने की उपज बढ़ाने के लिए नयी भट्ठियाँ लगाई जा रही हैं तथा ३ भट्ठियों का एक नया कारखाना पुत्तुलम में बनाया जा रहा है। खेती के लिए रासायनिक खाद बनाने के एक कारखाने की योजना बन चुकी है। कन्तलई, गालओया तथा वलव्व में चीनी के नये कारखाने खोले जा रहे हैं।
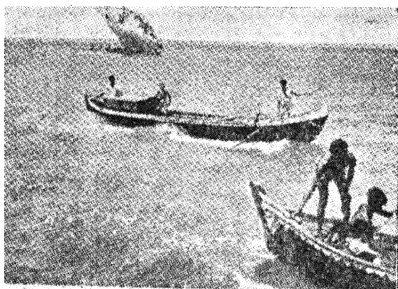
मछली पकड़ने के लिए मोटरबोटों का उपयोग

कपड़े, मिट्टी तथा चीनी के बर्तनों, प्लाइवुड, चमड़े, नमक, ईंटें तथा टाइल्स, शीशा, कागज़ तथा मशीनों और कलपुर्जों के आधुनिक कारख़ानों को बढ़ाया जा रहा है।

सीमेंट के उद्योग में २२ करोड़ रुपये, रासानिक खाद में १२ करोड़, चीनी में १५ करोड़ ४० लाख, शक्ति-उत्पादन में प्रयोग होनेवाले अल्कोहल में १ करोड़ ४१ लाख, रेयान में ६ करोड़ ९० लाख, हार्ड बोर्ड में १ करोड़ ३२ लाख, कागज में ४ करोड़ ५० लाख, सूती धागे तथा कपड़े में १२ करोड़, नमक में १ करोड़ ९० लाख, रसायनों में २ करोड़ ६० लाख ईंट तथा टाइलों में ९९ लाख, दवाइयों में ५ लाख, मिट्टी तथा चीनी के बर्तनों में १ करोड़ ५ लाख, प्लाइवुड में १० लाख, चमड़े में २२ लाख, इल्मेनाइट के उद्योग में ६२ लाख रुपयों की पूंजी दस-वर्षीय योजना के दौरान में लगायी जायगी।

देशी पूंजी के अलवा तेल साफ़ करने, लोहा तथा इस्पात और रबर के टायर बनाने के बड़े उद्योगों के लिए विदेशी पूँजी को भी निमंत्रित किया गया है। व्यक्तिगत पूँजी केवल उपयोग के लिए चीजों के बनानेवाले कारख़ानों में अब मुख्यतया लगेगी। विदेशी प्रतियोगिता से देशी उद्योगों को बचाने के लिए आयात-कर बढ़ा दिए जाएँगे; २ करोड़ ५ लाख रुपये की पूँजी से अनेक औद्योगिक नगर बसाये जाने की योजना है। तकनीकी और प्रबन्ध-भार के सँभालने की शिक्षा देने की व्यवस्था की जा रही है। दस-वर्षीय योजना के अनुसार इस प्रकार औद्योगिक उपज को १९५७ के ३८ करोड़ के मूल्य से बढ़ाकर १९६८ में १ अरब २९ करोड़ मूल्य की कर देने की कोशिश हो रही है।

इस समय लंका में कुल मिलाकर ८ करोड़ २० लाख

वाट्ट बिजली पैदा की जाती है; १९६८ में बिजली की पैदावार ३८ करोड़ २० लाख वाट्ट तक पहुँचा दी जायगी। लक्सापाना की बाँध और बिजली की तथा सेवन वर्जिन्स, महावेल्ली गंगा एवं बलव्व की खाड़ी की तीन अन्य योजनाओं का विकास करके यह संभव हो सकेगा।

लंका अपनी दस्तकारियों के लिए दुनिया में मशहूर है। ये दस्तकारियाँ हाथ से बुने-कते कपड़े, नारियल के छिलके बँटे हुए सूत से बनायी गयी चटाइयों तथा फर्शों, लाख, लकड़ी और हाथीदाँत के काम, मिट्टी के हाथ से बनाये गये बर्तनों और बेंत की बुनी हुई चीजों आदि से संबंधित हैं। इन दस्तकारियों के विकास की ओर स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

लंका के व्यापार में सहकारी समितियाँ विशेष रूप से सक्रिय काम कर रही हैं। १९५६ के आर्थिक वर्ष के आरंभ होने के दिन इन सहकारी समितियों की संख्या ९८४७ थी। इनमें ३३५६ उधार आदि देने का तथा २६६३ सामान बेचने का कार्य करती थीं।

लंका की खनिज सम्पति भी कम नहीं है। मुख्य खुदाई ग्रैफ़ाइट (प्लम्बेगो) की होती है, फिर माइका, अणु-संबंधी भौतिकी के परीक्षणों के लिए आवश्यक खनिजों की जैसे सेरियम, टैंटलम, थोरियम तथा यूरेनियम-समूह के कुछ अन्य खनिजों की, कच्चे लोहे, इल्मेनाइट, मोनाज़ाइट, ज़िर्कॉन तथा काओलिन की होती है। १८११ में २० लाख रुपयों के ग्रैफ़ाइट का निर्यात किया गया था और १९५५ में इसके निर्यात का मूल्य १ अरब ८७ करोड़ २१ लाख रुपयों तक

पहुँच गया। कीमती पत्थर और जवाहरात सबर्गमुवा के पहाड़ी इलाके में मिलते हैं। विशेषतः नील, लाल, लहसुनिया और एलेक्सैंड्राइट नाम का एक कीमती पत्थर। लंका अपने सबर्गमुवा के रत्नों के लिए पौराणिक काल से विख्यात रहा है।

पोलोन्नरुआ में भगवान बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा

५. सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिचय

लंका के वासी मुख्यतया बौद्ध हैं, यह हम देख ही चुके हैं। बौद्धों के अलावा द्वीप में हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई धर्म के अनुयायी बसते हैं। लंका की संस्कृति पर भारत ने सदा से अमिट छाप डाली है; इस संस्कृति में पश्चिमी प्रभाव पुर्तगालियों के इस देश में पहुँचने पर ही पड़ना आरंभ हुआ। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद इन प्रभावों से अछूती, लंका की निजी राष्ट्रीय संस्कृति के विकास पर लोगों का ध्यान गया है जिसमें सैकड़ों-हजारों वर्षों से सँजोये सांस्कृतिक प्रभावों को नया, राष्ट्रीय रूप दिया जा सके।

भगवान् बुद्ध के अतिरिक्त अन्य देवताओं की पूजा भी लंका में की जाती है। मुख्य देवता हैं : खतारगामा (कार्तिकेय ?) जो उवा प्रान्त के स्वामी हैं; समन (लक्ष्मण ?) जो श्रीपाद तथा उसके समीपस्थ प्रदेश की रक्षा करते हैं; उप्पलवन्न (विष्णु) जिन्हें द्वीप का संरक्षक देवता माना जाता है; नाथ अथवा मैत्रेयी या पद्मपाणि जो बुद्ध के भावी अवतार माने गये हैं। देवियों में एकमात्र पट्टिनी हैं जो कि सती का प्रतिरूप हैं और कुरुनेगला प्रान्त की अधिष्ठात्री हैं। दक्षिण भारत से लौटकर सिंहल-नृप गजबाहु ने इस देवी की पूजा लंका में प्रारंभ की थी। देवल तथा कपूरालो में अन्य हिन्दू-देवताओं की मूर्तियाँ

स्थापित की जाती हैं। गोईगम नाम की जाति इन मन्दिरों की देखभाल करती है।

भारत की तरह, और शायद भारतीय प्रभाव के कारण ही, लंका में भी जाति-व्यवस्था की परम्परा अभी तक जीवित है यद्यपि जाति-भेद में पहले की-सी कठोरता नहीं रही। एक जाति के लोग प्रायः एक ही गाँव में एक साथ रहते हैं। लगभग ४३ मुख्य जातियाँ सक्रिय रूप से देखने में आती हैं। विवाह के दो रूप हैं : दिगा, जिसमें कन्या-दान होता है और लड़की विवाह के बाद पति के घर जाकर रहती है, और बिन्ना, जिसमें विवाह के बाद वर अपनी ससुराल में आकर रहता है। बिन्ना किस्म के विवाहों को आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता। दहेज देने की प्रथा भी है और विवाह-संस्कार की मुख्य घटना को पोरुवा-उत्सव कहते हैं। बूआ की संतानों (नेना) और मामा की संतानों (मस्सीना) में हुआ विवाह आदर्श समझा जाता है।

एशिया महाद्वीप के अधिकांश वासियों की तरह चावल ही लंकावासियों की मुख्य खुराक है। कुछ भोजनों के नाम सम्बल, पोल पोड़ी (एक प्रकार की तरी), अप्पा (रुँधी हुई रोटी) तथा पिट्टु (आटा तथा कुतरे हुए नारियल से बनाया गया खाद्य) हैं।

गौ के दूध की अपेक्षा लोग भैंस के दूध और उससे बने हुए दही और मक्खन का अधिक प्रयोग करते हैं। दावतों में दही और शहद का विशेष महत्व माना जाता है। इधर गौ के दूध का इस्तेमाल भी बढ़ रहा है।

भारत की ग्राम्य जनता की तरह शुभ-अशुभ और मुहूर्त आदि का विचार लंका की आम जनता में भी है। जो बात

एकदम अशुभ और वर्जनीय है, उसे खिलि कहते हैं। कर्म के अनुसार पुनर्जन्म के चक्र में लोगों का विश्वास है। दैनिक जीवन पूजा-पाठ तथा भूत-प्रेतों को शान्त करने की रस्मों और दान, मंत्रोच्चार, जादू तथा नृत्यों आदि की प्रक्रियाओं से बँधा हुआ है। पूजा-स्थलों को पत्तों की बन्दनवारों से, पान-फूल चढ़ाकर और तेल के दीये जलाकर सजाया जाता है। धार्मिक अवसरों पर नाच करनेवाले ढोल और बाँसुरी के स्वरों पर, घंटियों और घुँघरू पहनकर नाच करते हैं।

लंका के अधिकांश वासियों का धर्म बौद्ध धर्म होने के कारण इस द्वीप में ऐतिहासिक महत्व के बौद्ध मन्दिरों की बहुतायत है। तिम्बिरिगस्यय में प्रसिद्ध अशोकरमय ऐतिहासिक महत्व का मन्दिर है जिसका यह नाम भारत के महान् सम्राट् अशोक की खातिर रखा गया जिसके भिक्षु-पुत्र महेन्द्र ने लंका-निवासियों को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था।

भारत में जिस प्रकार बौद्धकालीन भग्नावशेषों के साथ स्तूप मिलते हैं, कुछ उसी प्रकार की आकृति के स्तूप लंका में भी मिलते हैं और उन्हें दागब कहकर पुकारा जाता है। लोक-विश्वास के अनुसार भगवान् बुद्ध तीन बार लंका में आये थे। कोलम्बो से ५२ मील की
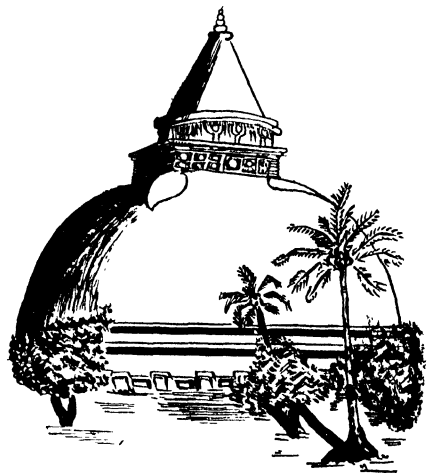
स्तूपाकार दागब पुराने भग्नावशेषों में स्थान-स्थान पर पाये जाते हैं।

दूरी पर केलानिया मन्दिर है जिसके दागब की आकृति असाधारण है। कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध के लंका में आने के एक अवसर पर तत्कालीन नागराज द्वारा जो सिंहासन उन्हें समर्पित किया गया था, उसे रखने के लिए इस बौद्ध मन्दिर के दागब की यह विशेषाकृति बनानी पड़ी थी।

दम्बुल्ल पर्वत पर स्थित बौद्ध मन्दिर एक भारी चट्टान को काटकर ईसा से एक शताब्दी पूर्व काल में वलगम्बबाहु नाम के प्रख्यात राजा द्वारा बनाया गया था। चट्टान की ऊँचाई ११२० फुट है; इसमें पाँच अलग-अलग गुफाएँ खोदी गयी थीं जिनमें बुद्ध की प्रतिमाएँ स्थापित की गयीं। एक गुफा में समूची पत्थर की बनी, भगवान् बुद्ध की ४७ फुट लम्बी, लेटने की मुद्रा में मूर्ति पड़ी हुई है। गुफाओं की दीवारों पर अर्हन्त के जीवन के भित्ति-चित्र हैं जो अभी तक काफ़ी सुरक्षित अवस्था में हैं। एक चित्र में लंका के प्रसिद्ध राजा टुठुगामणी के हाथों दक्षिण भारत के चोल-वंश के राजा एलारा की पराजय को दरशाया गया है।

कैन्डी के पेराहेरा के जुलूस में नर्तकों की टोली

लंका की पुरानी राजधानी कैन्डी में दलद मलिगवा नाम का प्रसिद्ध बौद्ध मन्दिर है जिसमें लोक-धारणाओं के अनुसार भगवान बुद्ध का एक दाँत सुरक्षित रखा हुआ है, यद्यपि विदेशी पुर्तगाली शासकों का दावा था कि इस दन्तावशेष को उन्होंने जलाकर राख कर दिया था। इस मन्दिर से एसल पेराहेरा का बड़ा जुलूस शुरू होता है। पेराहेरा लंका में किसी विशेष उत्सव का नाम है। कैन्डी के पेराहेरा में भगवान् के दाँत को भूषणों से अलंकृत हाथी पर रखकर जुलूस में निकाला जाता है; जुलूस के साथ ढोल पीटनेवाले और नाच करनेवालों के गिरोह के गिरोह चलते हैं।

कैन्डी प्रान्त में ही मलवट्टे, देगलदोरुआ तथा असिगिरिया नाम के अन्य प्रसिद्ध बौद्ध मन्दिर भी हैं।

लंका की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता द्वीप में पाये जाने-

एक प्राचीन विहार का रेखा-चित्र

वाले पुराने नगरों, प्रासादों और विहारों के भग्नावशेषों में

झलकती है। एक ज़माने में द्वीप के सूखे प्रदेशों में सिंचाई के लिए जगह-जगह बड़े-बड़े तालाब खुदवाये गये थे; उन तालाबों के अनेक खंडहर आज भी देखने को मिलते हैं। जिस दक्षता से वर्षा के अभाव में खेतीबारी की सिंचाई मनुष्य निर्मित
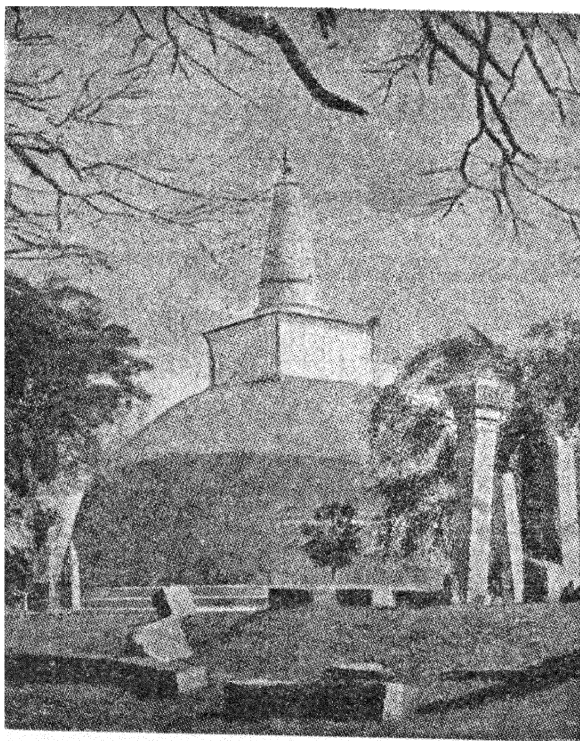
अनुराधापुर में रुआनबेली दागब

साधनों पर सम्पन्न कर ली गयी थी, वह अद्भुत है। द्वीप के उत्तर और केन्द्रीय भाग के जंगलों में स्थान-स्थान पर दागब खड़े मिलते हैं, जो कि पुरातन स्थापत्य कला की साक्षी हैं।

सिंहल-वंशी राजाओं की पुरानी राजधानी अनुराधापुर

के खंडहर उस काल के इतिहास को मानो स्पष्ट करने के लिए आज तक शेष हैं। ईसा से १२३ वर्ष पूर्व दुट्ठुगामणी द्वारा बनाये गये रुधानवेलिसय के ध्वंसावशेष भी मौजूद हैं; इसका जीर्णोद्धार
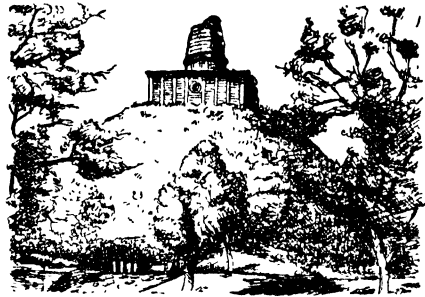
जेतवनाराम दागब

सौ वर्ष बाद भतिकभय नाम के राजा ने किया था। दुट्ठुगामणी ने ही १६०० खम्भोंवाला लोहप्रासाद बनवाया था जिस पर पीतल के पत्रे चढ़े हुए हैं। ईसा के चार शताब्दी बाद महासेन ने जेतवन दागब बनवाया था जो तब ३७० फुट लम्बी-चौड़ी नींवों पर, ४०० फुट ऊँचा बनाया गया था।

अभयगिरि दागब

आज १५०० वर्षों की अवधि में नष्ट-भ्रष्ट होने के बाद भी इस शिखर की ऊँचाई २३१ फुट है।

एक अन्य थूपाराम नाम के दागब में कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध के दाहिने कन्धे की हड्डी सुरक्षित पड़ी हुई है। वलगम्ब नाम के राजा द्वारा बनवाये हुए अभयगिरि दागब के अवशेष भी आज देखने को मिलते हैं।

पोलोन्नरुआ में इस्सुरुमुनिया विहार के अवशेष मिलते हैं जिसकी पत्थर पर खुदी हुई मूर्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इन मूर्तियों में प्रेमी-युगल की एक मूर्ति अत्यन्त मनोहर है। कहते हैं कि यह मूर्ति दुट्ठगामणी के पुत्र शालिय राजकुमार की

अनुराधापुर में थूपारामा दागब

है जो अशोकमाला नाम की एक परम सुन्दरी चांडाल कन्या के प्रेम-पाश में फँस गया था। कुछ अन्य विशेषज्ञों के अनुसार यह मूर्ति स्थिरचक्र और प्रज्ञा (शक्ति) की है; ललितासन में बैठे हुए स्थिरचक्र के हाथ में तलवार है और दूसरा हाथ वरद-मुद्रा में है।

पुरातन काल में लंका की राजधानी कभी पोलोन्नरुआ में भी हुआ करती थी। यह स्थान कोलम्बो से १३६ मील की दूरी

इस्सुरुमुनिया के प्रेमियों की भावपूर्ण पाषाण-प्रतिमा

पर है और इसके १२वीं सदी के भग्नावशेष अतीव ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व के हैं। पराक्रम प्रथम नाम के महान्

राजा के महल के खंडहरों से पता चलता है कि इसके १५०
चौक के प्रासाद के पूर्व और पश्चिम की ओर ड्योढ़ियाँ
बनी हुई थीं। दो मंजिलें ऊपर भी थीं, इसकी साक्षी भी

पोलोन्नरुआ के भग्नावशेषों का एक चित्र

मिलती थी। पत्थर की परतों के ऊपर बना हुआ, महल के पूर्व
की ओर एक सुन्दर मंडप था। इस मंडप के दक्षिण-पूर्व की ओर
दीवार के साथ सीढ़ियाँ उतरती थीं जो शाही स्नानागार में
जाती थीं। ग्यारहवीं और बारहवीं सदियों में विजयबाहु
प्रथम और निःशंकमल्ल नाम के राजाओं द्वारा निर्मित हतदगे
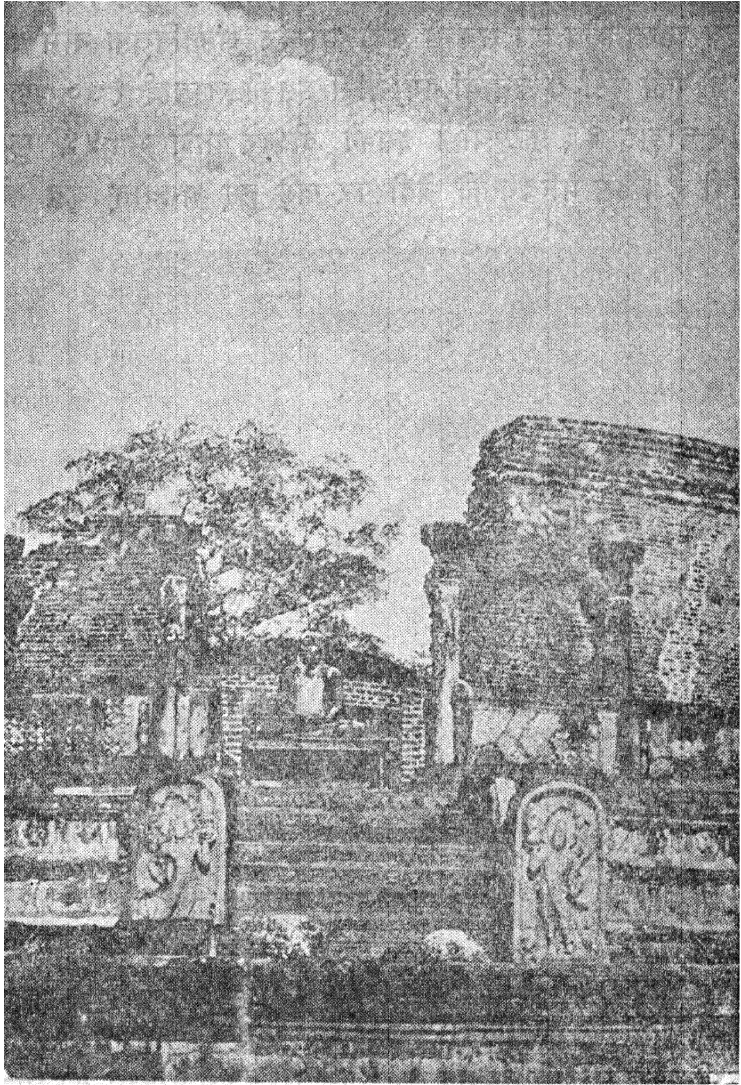
बतदगे : पोलोन्नरुआ के भग्नावशेष

और बतदगे स्थानों के अवशेष भी दर्शनीय हैं। गालपोटा में २७ फुट लम्बी एक चट्टान पर निःशंकमल्ल की कीर्ति का उल्लेख

है। सतमलपसाद, पाबुलु, विहार तथा रनकोट बिहार नाम के अन्य ध्वंसावशेष हैं। सब से बड़ा मन्दिर लंकातिलक नाम का है जो पकी ईटों से बनाया गया था। इसकी लम्बाई १७० फुट और चौड़ाई ६६ फुट थी। इसकी दीवारें आज भी ५५ फुट ऊँची हैं। इस मन्दिर की वेदी पर खड़े हुए भगवात् बुद्ध की

वतदगे : पोलोन्नरुआ में
समाधिस्थ भगवान बुद्ध की मूर्ति

एक विशाल प्रतिमा स्थापित की गयी थी। इस प्रतिमा का सिर अब नहीं मिलता है। इस भव्य मन्दिर का निर्माण पराक्रम-बाहु ने किया था और बाद में इसकी मरम्मत विजयबाहु चतुर्थ के शासन-काल में हुई।

अनुराधापुर से ८ मील की दूरी पर मिहिनतले नाम का स्थान है जहाँ पर कि देवानाम्पिय तिस्स के राज्य काल में अशोक के पुत्र महेन्द्र ने कदम रखा था। इसकी चोटी तक पहुँचने के लिए १८४० पगों की सीढ़ी खुदी हुई है। बौद्ध यात्रियों के लिए यह स्थान तीर्थ के समान है।

दूर से सिगिरिया के दृश्य का रेखांकन

कोलम्बो से १०३ मील दूर सिगिरिया नाम का स्थान है जिसका प्राचीन नाम सिंहगिरि था। समुद्री सतह से ११६३ फुट की ऊंचाई पर ६०० फुट ऊँची दीवारों का यह किला स्थापत्य का अद्वितीय नमूना है। शेर की विशाल प्रतिमा के पजों से किले पर चढ़ने के लिए चक्करदार

सिगिरिया के भित्ति-चित्रों में नारी

सीढ़ियाँ बनी हुई हैं जिनकी चौड़ाई और ऊँचाई ४ फुट के लगभग है। शेर के शरीर में से होती हुई यह सीढ़ियाँ ऊपर चट्टान के चार एकड़ चौड़े शिखर तक पहुँच जाती हैं। रास्ते के गलियारे की दीवारों पर अद्वितीय भित्ति-चित्र खिंचे हुए हैं जिनकी तुलना अजन्ता की गुफाओं के चित्रों से की जा सकती है। ईसा की छः शताब्दी बाद के काल में बनाये गये इन चित्रों में २२ स्त्रियों के चित्र अभी काफी सुरक्षित दशा में हैं। इन चित्रों का कोई धार्मिक महत्व अथवा प्रसंग नहीं है। आर्यों के समान बाह्यांगों, समुन्नत स्तनों और पतले कटि-प्रदेशवाली इन सुन्दरियों के मुख पर चित्रकार अमर मुस्कान को झलका देने में सफल हुए हैं।

सिगिरिया के भित्ति-चित्रों की एक रेखाकृति

राज धानुसेन के पुत्र कश्यप ने सिगिरिया को बनवाया था। अपने भाई मोग्गलान के क्रोध से अपनी रक्षा करने के लिए इस प्रकार की किलाबन्दी से बेहतर कौन-सा स्थान हो सकता था? पितृहन्ता कश्यप से बदला लेने के लिए मोग्गलान दक्षिण भारत से सहायता लेकर युद्ध के लिए लौट आया और विजयी हुआ। सिगिरिया की भव्य इमारत के निर्माता कश्यप

को युद्धस्थल में आत्महत्या कर लेनी पड़ी।

१३वीं शताब्दी में बनाया गया यपहुवा का किला भी सिगिरिया के किले की तरह का ३०० फुट ऊँची चट्टान पर बनाया गया। कलनेवा के प्रान्त में आकुन नामक स्थान पर बुद्ध की ३९ फुट ऊँची मूर्ति मिलती है जिसका निर्माण ईसा

सिगिरिया में सिंह के पंजे जिनके बीच से सीढ़ियाँ ऊपर किले की ओर जाती हैं

के बाद चतुर्थ शताब्दी में हुआ था। मूर्ति अपनी भव्य गरिमा के साथ अभी भी वैसी ही खड़ी है। एक अन्य स्थान मेदिरि-

सिगिरिया के भित्ति-चित्रों में २२ नारियों की रेखाकृति
स्पष्ट और अभी तक सुरक्षित है।

गिरी है जो कभी पुनीततम तीर्थ-स्थान था। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में २६ फुट की परिधि के स्तूप को घेरकर यहाँ एक गोलाकार मन्दिर ईसा के बाद सातवीं सदी में बनाया गया था।

लंका का सबसे पुराना दागब—थूपराम ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दी में बनाया गया था। इन दागबों के गर्भ में कोई पवित्र अवशेष अथवा वस्तुएँ रखी जाती थी।

औकन बुद्ध की भव्य मूर्ति के चरण

कैन्डी के पेराहेरा के उत्सव में निकलनेवाले जुलूस के साथ, जैसा कि हम जान चुके हैं, लोकनृत्य करनेवालों के गिरोह रहते हैं। ये नृत्य कैन्डी के नृत्यों के नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं यद्यपि कैन्डी की कोई स्थानीय विशेषता इनमें नहीं है। ये नृत्य लंका के परम्परागत नृत्यों की कड़ी में हैं। लंका की

पुरातन कला और चित्रकारी, नाट्यकला तथा आज का सिंहली नाट्यमंच दक्षिण भारत के प्रभाव के अन्तर्गत ही आते हैं। कुछ विशेष जातियाँ इन दस्तकारियों, कलाओं, चित्रकारी और नृत्य की परम्परा को जारी रख रही हैं। ओली और बेरवा जाति के लोग प्रायः नर्तक होते हैं। शुद्ध सिंहली नृत्य परम्परा

विशिष्ट वेश-भूषा तथा अलङ्कार पहने हुए
कैन्डी का एक नर्तक

नेकथी जाति के लोगों के हाथ में है। इन लोक-नृत्यों के नाम साथ में गाये जा रहे गीतों के अर्थों के अथवा नर्तकों के हाथ में पकड़ी हुई चीजों के अनुसार रखे जाते हैं। नृत्यों के साथ नाटकीय भावभंगी का प्रदर्शन भी चलता है। वन्नम काम का लोक-नृत्य १८ विभिन्न प्रकार का होता है और इसमें विभिन्न पशु और पक्षियों के हावभाव और चालढाल दिखलायी जाती हैं।

लंका में लोक-नृत्य, जैसा शायद सभी अन्य देशों में भी, प्राचीन काल के धर्म और जादू का अतरंग भाग थे। लंका में इनका दूसरा रूप नकली चेहरा लगा के नृत्य करने का है

कैन्डी के नर्तक का शिरोधान तथा कर्णाभूषण

जिन्हें बाली नृत्य कहते हैं और जिनका मुख्य उद्देश्य दुष्टात्माओं को भगाने का होता है।

देवालयों और मन्दिरों के उत्सवों और पूजा-पाठों के साथ भी नृत्य होते हैं। लेकिन लोक-नृत्य की इस परम्परा के साथ लंका में संगीत का विकास देखने में नहीं आता, और

अन्य कलाओं की भाँति इसका प्रस्फुटन यहाँ नहीं हुआ। लंका में कोई अपना राष्ट्रीय, परम्परागत वाद्य-यंत्र नहीं है; भारतीय वाद्य-यंत्रों का उपयोग ही देखने में आता है। तारवाले वाद्य-यंत्रों का प्रयोग बहुत कम होता है।
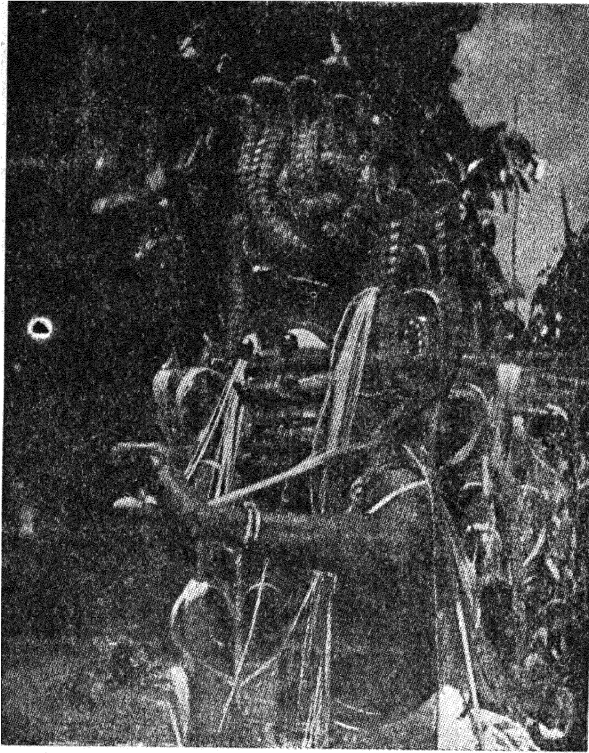
नकली चेहरा पहने हुए वाली-नृत्य की एक मुद्रा

चित्रकला का उपयोग पौराणिक गाथाओं की घटनाओं और चरित्रों के अंकन में होता आया है। सित्तारू जैसी जातियों ने अपने को इस कला का विशेषज्ञ कर लिया हुआ है। यही लोग मन्दिरों के अलंकरण आदि का काम करते हैं।

चित्रकला के उत्कृष्ट नमूने भित्ति-चित्रों, लाख की चीजों, नकली चेहरों तथा मूर्तियों पर देखने को मिलते हैं ।

इन नृत्यों की विशेष भंगिमाएँ पुराने काल से चली आ रही हैं; उनका शिल्प तथा प्रतीकात्मक महत्व काफी गहन माना जाता है । नर्तक झालर लगे सफेद वस्त्र लाल डोरियों से कमर पर
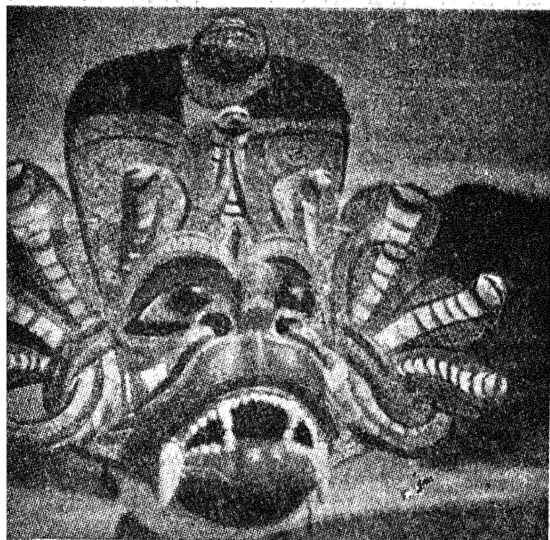
एक बाली-नृत्य में प्रयुक्त होनेवाले
नागरक्षा नाम के नकली चेहरे का चित्र

बाँधते हैं जो उनके टखनों तक पहुँचता है । कमर से ऊपर प्रायः वस्त्रधारण नहीं किया जाता; छाती पर रंगबिरंगे कीमती पत्थर जड़े आभूषण पहने जाते हैं, या कभी-कभी महीन नक्काशी की बण्डी। गले में रंगीन दानों की मालाएँ तथा सिर पर कभी सफेद पगड़ी-सी या मुकुट रहता है ।

अन्त में हम लंका-वासियों द्वारा मनाये जानेवाले मुख्य मेले-त्योहारों का कुछ हाल भी जान लें । बौद्ध मेलों में एक

कैलानिया मन्दिर पर प्रतिवर्ष जनवरी मास में लगता है जब कि बड़ी सजधज से जुलूस निकाला जाता है। इस उत्सव का नाम दुरुतु पेराहेरा है और यह लोक-विश्वास के अनुसार भगवान् बुद्ध के प्रथम बार लंका में आने के उपलक्ष्य में मनाया जाता है।

बौद्धों द्वारा मार्च मास की पूर्णमासी को भगवान बुद्ध के जन्म, बौद्ध-पद पाने तथा परिनिर्वाण के उपलक्ष्य में वेसाक उत्सव मनाया जाता है। इसी प्रकार जून मास की पूर्णमासी के दिन अर्हत महेन्द्र के लंका आने और इस द्वीप में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के उपलक्ष्य में पोसन उत्सव आयोजित होता है।

कैन्डी में स्थित दलद मलिगवा, भगवान् बुद्ध के दंतावशेष के मन्दिर, में प्रतिवर्ष एसल पेराहेरा बड़े जोश, सजे हुए हाथियों और नर्तकों के जुलूस के साथ जुलाई या अगस्त में होता है। मेलों में इस अवसर पर सर्वाधिक धूमधाम होती है।

उन्दुवय पूर्णमासी को एक मेला, जिसे संघमित्ता-दिवस भी कहते हैं, दिसम्बर में प्रतिवर्ष आयोजित होता है जब कि महेनु की बहिन संघमित्रा गया के बोधिवृक्ष की शाखा लेकर लंका में पहुँची थी।

सिंहल तथा तमिल लोग दोनों १४ अप्रैल को नये वर्ष के आगमन के दिवस पर साथ-साथ उत्सव मनाते हैं।

लंका के हिन्दुओं के मुख्य त्योहार हैं : थाई पोंगल जो १४ जनवरी को मनाया जाता है और इस दिन सूर्य भगवान् की पूजा की जाती है; आदि-अमावस्या का दिन जो जुलाई में पड़ता है और जिस दिन पवित्र नदियों तथा तीर्थ-स्थानों पर

स्नान करने का माहात्म्य मानते हैं; सरस्वती-पूजा का दिन जो अक्तूबर में आता है; दीपावली जैसी कि भारत में प्रतिवर्ष नवम्बर मास में मनायी जाती है।

मुसलमानों के मेले-त्यौहार और के मुख्य अन्य धार्मिक दिन मिलाद शरीफ, जिस दिन हजरत मोहम्मद का जन्म हुआ था, रमज़ान जब कि आत्मशुद्धि के लिए रोज़े रखे जाते हैं, तथा हज है जब कि हजरत अब्राहम द्वारा किये गये बलिदानों की यादगार में हज की यात्रा की जाती है।

ईसाइयों के लिए मेले और धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण दिन वही है जो कि दुनिया-भर के ईसाइयों द्वारा मनाये जाते हैं।

मिलने पर भारत की नमस्ते की भाँति लंका के वासी एक दूसरे को आयुबोवान कहकर संबोधित करते हैं, जिसका अर्थ होता है कि आपकी आयु लम्बी हो। धन्यवाद की जगह कहा जाता है बोहोम स्तुति !

६. लोक-कल्याण की व्यवस्था और योजनाएँ तथा विधान

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से ही लोक कल्याण की—स्वास्थ्य, शिक्षा तथा मकान आदि बनाने की योजना पर लंका में विशेष ध्यान दिया जा सका है। दस-वर्षीय योजना में इन पर राज्य-कोष से काफी व्यय किया जायगा। एशिया के अन्य देशों से इससे पूर्व भी अपेक्षाकृत अधिक व्यय किया जा रहा था, जो निम्न आँकड़ों से स्पष्ट होगा :

समाज-कल्याण की सेवाओं पर सरकारी व्यय (अनुदानों के अतिरिक्त कुल सरकारी व्यय का प्रतिशत अनुपात

	५३-५४	५४-५५	५५-५६	५६-५७	५७-५८
लंका	३०·०४	२८·१२	२५·६८	२५·७४	२६·००
मलय	१४·७४	१५·७८	१७·६१	१९·५३	२१·३८
बर्मा	८·९१	१०·३७	१२·७२	१२·०५	११·४४
भारत	९·७६	१०·१०	१०·२५	९·९८	९·५७
पाकिस्तान	०·९९	१·६८	१·५२	१·४९	१·४२

समाज-कल्याण की सेवाओं में से स्वास्थ्य-संबंधी योजनाओं पर, जब कि लंका में १९४८-४९ में ८३ लाख ७० हजार रुपये खर्च किये गये थे, यह रकम बढ़कर १९५७-५८ में १ करोड़ २४ लाख ८० हजार हो गयी। दस-वर्षीय योजना

की अवधि में इन्हीं योजनाओं पर ४४ करोड़ ६० लाख रुपये खर्च किये जायँगे। अस्पतालों की संख्या १९५५ में ३८१ थी जिनमें २५,४८२ रोगियों के लिए स्थान था; १९५६ में ६ नये अस्पताल खोले गये, जिनमें १०८४ रोगियों के लिए स्थान बढ़ा दिया गया। मच्छरों के कारण फैलनेवाले मैलेरिया की

ग्राम के एक स्कूल के बच्चों को साफ़ पानी के उपयोग के तरीके बतलाती हुई एक सार्वजनिक कार्यकर्तृ

रोकथाम के लिए ग्रामों में तथा नगरों में खास कदम उठाये गये हैं। तपेदिक तथा रेबीज़ के नियंत्रण, उपचार एवं इनसे सुरक्षा के लिए आवश्यक सार्वजनिक प्रबन्ध जुटाये जा रहे हैं। स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक परीक्षणशालाओं की स्थापना विभिन्न नगरों में की गयी है।

श्रमिक जनता के लिए मकान आदि की व्यवस्था करने

की योजना पर शासन का ध्यान गया है। खुले तथा हवादार मकान न केवल मजदूरों के लिए वरन् मध्यवर्ग के परिवारों के लिए भी बनाये जा रहे हैं। इस प्रयोजन के लिए मकान बनानेवाली सार्वजनिक तथा सरकारी समितियों को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है। १६६८ तक नगरों में २,८७,००० तथा ग्रामों में ६,६५,००० मकान बनाने की योजना है।

प्राचीन काल में लोगों की शिक्षा का दायित्व मुख्यतया बौद्ध भिक्षुओं के कंधों पर था। विशेषतः उच्च शिक्षा के लिए शालाओं का चालन, जिन्हें पिरिवेना कहा जाता था, यही लोग करते थे। राजाओं की तरफ से प्रत्येक ग्राम में एक स्कूल खोलने का आदेश था और जो भिक्कु इन्हें चलाते थे, वह विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा देते थे। भिक्कुओं का जीवन राज्य-वृति पर आश्रित होता था। देशी राजाओं की स्थिति में अवनति के साथ-साथ शिक्षा की इस व्यापक व्यवस्था का ह्रास हो गया। तब, १६वीं सदी में यूरोप के उन अधिपतियों की ओर से, जिनका सिक्का लंका में चलने लगा था, स्कूल खोले गये। इन स्कूलों का मुख्य उद्देश्य स्थानीय जनता को ईसाई बनाने का था। पुर्तगालियों के स्कूल लोगों में रोमन कैथोलिक धर्म का प्रचार करते थे। हॉलैंड के आधिपत्य के दिनों में प्रोटेस्टेंट धर्म का प्रचार हुआ। अंग्रेजों का ध्येय भी 'शिक्षा के ईसाइयत के प्रचार के पहलू' का विशेषरूप से ध्यान रखना था। प्रत्येक स्कूल में प्रति दिन एक घंटा बाइबिल पढ़ाई जाती थी। १६वीं-सदी से अन्य अनेक ईसाई धर्म का प्रचार करनेवाली मिशनों की स्थापना लंका में हो गयी। १८१२ में बैप्टीस्टों की, १८१४ में वेस्लेयन्स की, १८१६ में अमेरिकन

मिशन की तथा १८१८ में चर्च मिशनरी सोसायटी की।

बौद्ध तथा हिन्दुओं द्वारा आयोजित आधुनिक ढंग के स्कूल बहुत बाद में खोले गये, और अनेक शिक्षा-संस्थाएँ भी बनीं।

विदेशी शासकों के दिनों में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य तत्कालीन शासकों का भाषा का ज्ञान ही रह गया था। देश की संस्कृति के आराष्ट्रीयकरण में फलस्वरूप इस प्रकार की शिक्षा ने काफी हाथ बँटाया।

अब राष्ट्रीय तथा उपयोगी शिक्षा की व्यवस्था की बृहत् योजनाएँ बनायी गयी हैं और ये किंडरगार्टन से विश्वविद्यालयों तक की शिक्षा के क्षेत्र को प्रभावित करेंगी। मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम रखने के सिद्धान्त को मान लिया गया है, यद्यपि अंग्रेजी को आवश्यक रूप से द्वितीय भाषा का स्थान दिया गया है।

जापान के बाद एशिया के देशों में लंका की जनसंख्या में सुशिक्षितों का अनुपात ही सर्वाधिक है। ९० लाख की जनसंख्या में से इस समय ५० लाख से अधिक विद्यार्थी लंका के लगभग ६००० स्कूलों में शिक्षा पा रहे हैं। कैन्डी के पास के पेरादेनिया नाम के उपनगर में लंका का सर्वोच्च विश्व-विद्यालय स्थापित किया गया है। योजना की अवधि में शिक्षा पर कुल ४० करोड़ रुपये खर्च करने की योजना है।

लोक-कल्याण की इन योजनाओं के अतिरिक्त सांस्कृतिक पुनरुत्थान की ओर भी लंकावासियों का ध्यान गया है। राष्ट्रीय कलाओं और दस्तकारियों को अनेक तरीकों से प्रोत्साहित किया जा रहा है। सरकार की ओर से धर्म-सम्बन्धी देखभाल के

लिए लंका बौद्ध मंडलय तथा साहित्य की प्रगति और साहित्यिकों के संरक्षण के लिए लंका साहित्य मंडलय नाम की दो संस्थाएँ स्थापित की गयी हैं। देश की सरकारी भाषा सिंहली है, यद्यपि शासन के विभिन्न विभागों में आवश्यकता के अनुसार तमिल का प्रयोग भी स्वीकृत है। सरकार की ओर से विभिन्न विषयों की पारिभाषिक शब्दावलियाँ तथा पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित की गयी हैं। प्राचीन खंडहरों की देखभाल तथा सुरक्षा के विशेष प्रबन्ध हुए हैं। प्राचीन राजधानी के पड़ोस में ही नया अनुराधापुर बसाया जा रहा है।

ब्रिटिश पार्लमेंट द्वारा १९४७ में स्वीकृत इंडियन इंडिपेंडेंस ऐक्ट के अनुसार लंका को ब्रिटिश राष्ट्रसंघ के एक उपनिवेश का
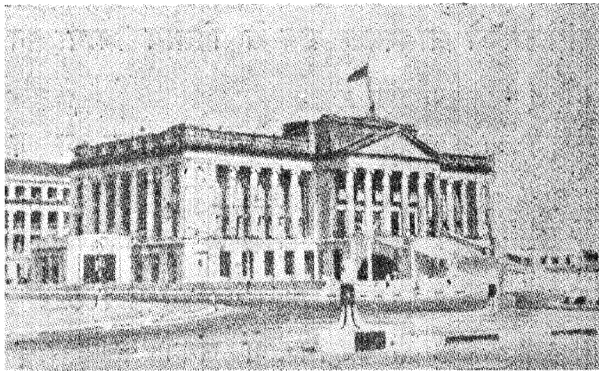
कोलम्बो-स्थित लंका की लोकसभा का चित्र

पद दिया गया था। स्वीकृत विधान के अनुसार शासन-यंत्र विधि-व्यवस्था करनेवाली दो संस्थाओं को सौंपा गया था; एक हाऊस आफ रिप्रिजेंटेटिव्स अर्थात् लोकसभा, तथा दूसरा सेनेट, अर्थात् राज्यसभा। लोकसभा के ९५ सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं तथा ६ मनोनीत किये जाते हैं। राज्य-

विदेशी राजनीति किसी गुटबन्दी में शामिल न होने की तथा सक्रिय तटस्थता की रखी है, जो कि भारत की विदेशी राजनीति के अनुरूप है।

लंका के राष्ट्रीय झंडे का रंग किरमची है; झंडे की ऊँचाई की ओर अन्दर पीले रंग का एक हाशिया, और हरे तथा केसरी रंग की दो खड़ी लकीरें भी दी जाती हैं। झंडे के दोनों कोनों में सिंहली शंकु बने रहते हैं। एक पीली लकीर झंडे के मध्य में भी खींची जाती है।

७. इतिहास : प्रथम चरण

लंका के सबरगमुआ प्रान्त की कुछ गुफाओं में पाषाण-युग के पत्थर के बने हुए औजार पाये गये हैं जिससे सिद्ध होता है कि इस द्वीप में मनुष्यों का निवास हजारों वर्षों से रहा है। आर्यों से पूर्व के काल की उस जाति की एक शाखा, जिसका मूल निवास दक्षिण भारत में था, लंका में कभी भी पहुँची थी और वहाँ भी बसी थी। इन पूर्वजों के बारे में जो कुछ ज्ञात हो सका है वह द्वीप के उत्तर-पश्चिम, दक्षिणी और दक्षिण-पूर्वी क्षेत्रों में मिलनेवाले उनके कुछ अवशेषों से ही जाना जा सका है।

उस काल का इतिहास अधिक स्पष्ट नहीं है। विश्वास-पूर्वक वैद्द जाति के लोगों को ही लंका के आदि-निवासी माना जाता है। इनकी भाषा का सम्बन्ध मलय द्वीप की सेमांग और पैंगान जातियों अथवा अन्दमान द्वीप के आदि-वासियों की भाषा से जोड़ा जाता है। इनके जातीय रक्त में नीग्रो, ऑस्ट्रोलायड तथा मेडिटेरेनियन जातियों का सम्मिश्रण माना जाता है।

यूनान के ज्योतिषाचार्य टॉलेमी ने लंका का सबसे पहला नक्शा बनाया था। टॉलेमी ईसा के बाद की दूसरी सदी में मिस्र देश में रहता था। इस नक्शे में वास्तविकता को बहुतबढ़ा-

चढ़ा कर दिखलाया गया था, लेकिन इससे यह पता तो चलता ही है कि लंका के बारे में ज्ञान उस समय दूर देशों के लोगों को भी था। रोम में ढले हुए चौथी सदी के सिक्के भी लंका में पाये गये हैं, जिसका अर्थ हुआ कि विदेशी यात्री व्यापार के लिए इस द्वीप तक पहुँचा करते थे।

लंका का पिछले २५०० वर्षों का लिखित इतिहास उपलब्ध है; इतने लम्बे काल का और किसी देश का इतिहास नहीं मिलता। बौद्ध इतिहासकारों के कारण ही ऐसा संभव हो सका है, जिनकी रुची मुख्यतया इस द्वीप में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार की कहानी को लिखते रहने में थी।

लंका के सर्वप्रथम राजा का नाम विजय था, जो उत्तरी भारत से आर्यभाषा में बोलनेवाले अपने साथियों के गिरोह के साथ ४८३ ई० पू० में लंका के तट पर उतरा और जिसने एक स्थानीय राजकुमारी से विवाह-सम्बन्ध स्थापित किया। भारत में सिंह नाम के किसी आततायी के प्राण हरने के कारण उसे सिंहल का नाम दिया गया था, और इसी से लंका का नाम सिंहल-द्वीप पड़ा। सिंहल राजाओं ने अपनी राजधानी पहले राजरठ, और फिर अनुराधापुर में बनायी। २४६ ई० पू० में भारत के सम्राट् अशोक ने अपने पुत्र भिक्कु महेन्द्र को लंका-निवासियों को बौद्ध धर्म में दीक्षित करने के लिए यहाँ भेजा। इस प्रकार लंका-निवासियों ने ईसा से ३ शताब्दी पूर्व बौद्ध धर्म को अपना लिया था।

दक्षिण भारत के चोल-वंश के एलाला नाम के एक तमिल-भाषी राजा ने लगभग १६० ई० पू० में आक्रमण करके सिंहलियों की गद्दी छीन ली और द्वीप पर ४४ वर्ष राज्य किया।

एलाला को अन्त में दुट्ठुगामणी नाम के देशी युवराज के हाथों पराजित होना पड़ा ।

ईसा से पूर्व की तीसरी तथा दूसरी शताब्दियों में सिंहली राजाओं द्वारा बनाये गये स्तूपों अथवा दागबों द्वारा उस काल के इतिहास पर रोशनी पड़ती है । इसमें उस काल के मुख्य तिस्सामदारामा के दागब हैं । सब से अधिक महत्व का दागब
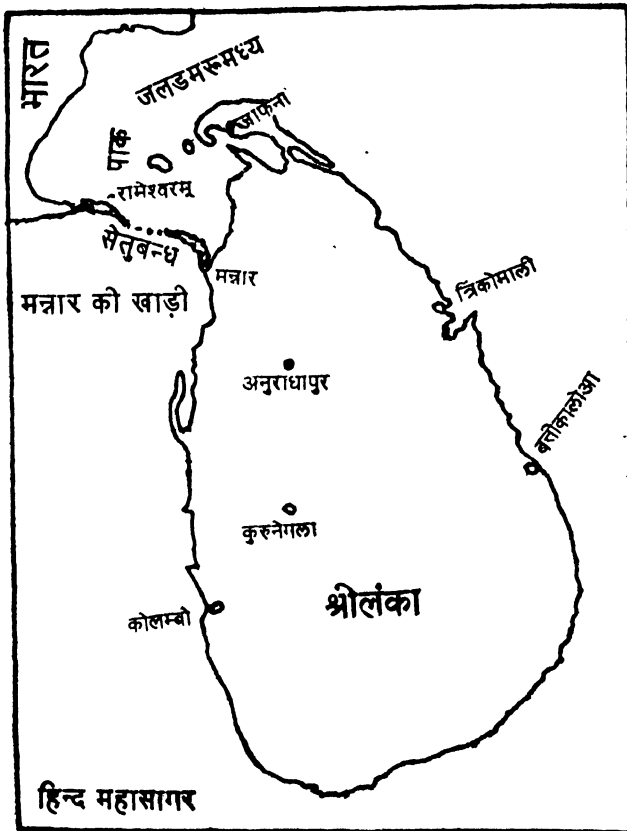
यट्ठल दागब है । सब से पहला बनाया गया दागब थूपारामा का दागब है, जिसे अशोक के समकालीन, लंका के राजा

देवानामपिय तिस्स ने बनवाया था। दुट्ठुगामणी ने अपने राज्य के अमर चिन्ह-स्वरूप अनेक इमारतें बनवायी थीं जिनके खंडहर रुआनवेली तथा मिरिस्वेतीय दागबों में आज भी देखने को मिलते हैं। ये दागब ईसा से एक शताब्दी पहले बनवाये गये थे। दुट्ठुगामणी ने विहार के रूप में नौ मंजिलों का एक लोह प्रासाद भी बनवाया था। वट्टगामणी नाम के राजा ने इसी काल में अभयगिरि नाम के दागब का निर्माण करवाया था।

ईसा के १ हजार वर्ष बाद तक का इतिहास सुस्पष्ट नहीं है। इस काल में भारत से निरन्तर आक्रमण होते रहे, और छोटे-छोटे स्थानीय राज्यों में निरन्तर संघर्ष भी चलता रहा। द्वीप के उत्तरी भाग पर सिंहलियों का तथा दक्षिणी भाग पर प्रायः उसके प्रतिद्वन्द्वियों का कब्जा रहा। सिंहली राजा ७६० ई० में अपनी राजधानी अनुराधापुर से हटाकर पोलोन्नरुआ में ले गये।

इस लम्बी अवधि में कोई केन्द्रीय सत्ता अपने को नहीं जमा सकी। राजा की ताकत अवश्य हुआ करती थी और अपने सैन्य बल से वे प्रतिद्वन्द्वियों और विद्रोहियों को दबाया करते थे। उन्हें सलाह-मशविरा देने के लिए मंत्रियों की एक समिति भी हुआ करती थी जो राज्य के श्रेष्ठ लोगों में से चुनी जाती थी। द्वीप को प्रान्तों में बाँटा जाता था, और प्रान्तों पर राजा के प्रतिनिधियों का शासन हुआ करता था। ये प्रतिनिधि प्रायः राज्य-घराने के सदस्यों में से ही होते थे। ग्रामों में पंचायतों का महत्व बहुत अधिक था जो इस व्यवस्था को गणतंत्र का रूप देता था। ये पंचायतें परम्परागत मान्य-

ताओं के अनुसार स्थानीय झगड़े निपटाया और फैसले किया करती थीं।

आरंभ में राजाओं की दैवी शक्ति पर लोगों का विश्वास नहीं था। वे तभी तक राज्य कर सकते थे जब तक वे न्याय का त्याग न करें और विदेशी हमलों से द्वीप की रक्षा करने में सक्षम रहें। बाद में राजाओं की दैवी सत्ता में विश्वास बढ़ा, और ये राजा प्रजा से केवल आज्ञा-पालन और समादर की ही नहीं, पूजा की अपेक्षा और माँग भी करने लगे। राज्य-शृङ्खला पिता से पुत्र को न जाकर बड़े भाई से छोटे भाई तक जाती थी।

राजा लोग कभी-कभी सेना का संचालन अपने हाथ में ले लेते थे, लेकिन प्राय: इस कार्य के लिए सेनापतियों की नियुक्ति किया करते थे। फौजी सेवा के उपलक्ष्य में सिपाहियों को भूमि प्रदान की जाती थी। बाद में जिनके पास राजाओं द्वारा प्रदत्त भूमि होती थी, उनके लिए फौजी सेना अनियार्य मानी जाने लगी।

बौद्ध भिक्षुओं को समाज में विशेष आदर का स्थान प्राप्त था। उन्हें अपने मन्दिरों के लिए राजाओं से जमीन मिल जाती थी। मुख्य भिक्षु को अन्य भिक्षु निर्वाचित करते थे। अन्य अनेक बौद्ध देशों से भिक्षु-पर्यटकों के लंका में आने के दृष्टान्त मिलते हैं।

पाँचवीं शताब्दी के आरंभ में प्रसिद्ध चीनी पर्यटक फाहियान लंका में आया था और २ वर्ष यहाँ रहा। उसके लिखे गये वृत्तान्तों के अनुसार इस द्वीप का मुख्य व्यापार मोतियों और रत्नों का था। बाजार समतल होते थे, और साफ रखे

जाते थे। हर चौराहे पर बौद्ध चैत्यालय बने रहते थे। भिक्कुओं की संख्या ५० से ६० हजार की थी। तब बोधिवृक्ष लंका में फल-फूल रहा था। राजा धार्मिक होते थे और धर्म-कर्म में भाग लेते थे। लोगों का मुख्य पेशा कृषि का था; जलवायु गर्म थी और धरती उपजाऊ। उसके लिखे अनुसार द्वीप में वर्षा बहुत कम समय के लिए होती थी, परिणामस्वरूप राज्याधिकारियों को सिंचाई की व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान देना पड़ता था। नदियों पर बाँध बाँधे जाते थे और उनमें से नहरें निकाली जाती थीं। पानो को जमा रखने के लिए बड़े बड़े तालाब खोदे जाते थे।

पुर्तगालियों के विश्वास के अनुसार इस द्वीप को चीन से निकाले गये एक राजकुमार ने बसाया था।

लंका के अस्तित्व की जानकारी रोम और यूनान के इतिहासज्ञों और भूगोलशास्त्रियों को थी, यद्यपि वे इसकी ठीक स्थिति व आकार आदि से परिचित नहीं थे। यूरोप का पहला निवासी, जो सिकन्दर की नौसेना का एक नाविक था, ईसा से चतुर्थ शताब्दी पूर्व लंका में आया था। ३०० ई० पू० में प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार मेगस्थनीज़ मेसिडोनिया का राजदूत होकर भारतवर्ष में आया था। उसने भी लंका के विषय में लिखा है। लंका में पाये जानेवाले जीव-जन्तुओं के नाम गिनाने के अलावा उसने इस द्वीप से बाहर भेजे जानेवाले स्वर्ण और मणि-मुक्ताओं का उल्लेख भी किया है। इराटोस्थनीज़, हिप्पार्कस, आर्टमिडोरस आदि अन्य यूनानी लेखकों को भी लंका के बारे में ज्ञान था। स्ट्राबो नाम के यूनानी इतिहासकर ने इनका उल्लेख किया है।

रोम के एक तटीय अधिकारी से सूचनाएँ प्राप्त करके प्लिनी द एल्डर ने भी लंका का उल्लेख किया है। इस अधिकारी का जहाज लंका के किनारे के पास टूट गया था और उसे द्वीप में कई मास के लिए रहना पड़ा था। प्लिनी ने इस द्वीप की समृद्धि, धरती के उपजाऊ होने तथा लोगों के साधारणतया सन्तुष्ट होने की बात लिखी है। उसकी सूचनाओं के अनुसार लंका के शासक प्रजा से नरमी से पेश आते थे।

ईसा के बाद तीसरी शताब्दी में बीर तिस्सा नाम का साधु प्रकृति का राजा गद्दी पर बैठा। उसके पौत्र के राज्य-काल में सिंहासन के लिए फिर से झगड़ा हुआ। इस कलह में विजयी सिरी संगबो २५० ई० सन् में गद्दी पर बैठा। राजा-वलीय के अनुसार उसके राज्यकाल में जो दुर्भिक्ष पड़ रहा था, वह उसके नैतिक आचरण के बल पर टल गया। गोलु आबा ने, जो कुछ वर्ष पहले राज्य के अधिकार के झगड़े में मारे गये राजा का भाई था, फिर से झगड़ा पैदा किया, लेकिन उसका विरोध न करके सिरि संगबो साधु बन गया।

गोलू आबा के भाई महासेन ने २४७ ई० सन् में राज्य की बागडोर सँभाली। सिंचाई की बड़ी-बड़ी योजनाओं के लिए महासेन के राज्य का समय प्रख्यात है।

महासेन के लड़के के राज्यकाल में भगवान् के दंतावशेष भारत से लंका ले जाये गये। कलिंग के राजा ने कह रखा था कि यदि युद्ध में उसकी मृत्यु हो जाय तो उसकी पुत्री और बहनोई इस पवित्र अवशेष को लंका पहुँचा दे।

अगला महत्व का राजा बुद्धदास हुआ जो सन् ३४० में गद्दी पर आया। उसकी विशेष रुचि औषधि और चिकित्सा के

कामों में थी। उसने स्थान-स्थान पर चिकित्सालय खुलवाये और उनमें चिकित्सक नियुक्त किये। प्रत्येक १० ग्रामों के पीछे एक चिकित्सक रखा गया।

लंका के इतिहास की पाँचवीं, छठी तथा सातवीं शताब्दियाँ बड़ी आंतरिक अशांति और गृह-युद्ध में गुज़री। विद्रोही दक्षिण भारत के तमिल राजाओं से आसानी से सैनिक सहायता प्राप्त कर लेते थे। ९वीं शताब्दी में दक्षिण भारत की ओर से होनेवाले हमलों की संख्या बढ़ गयी और ११वीं सदी में लंका का द्वीप चोल-साम्राज्य का एक भाग हो गया।

लंका से विदेशियों का व्यापार कई सदियों से हो रहा था। ८वीं सदी में फारस की खाड़ी के कई अरबी व्यापारी लंका में आकर बस भी गये। ये मुसलमान थे और लंका के आज के मूर लोग इन्हीं की सन्तान हैं।

८. इतिहास : द्वितीय चरण

नवीं-दसवीं सदी से दक्षिण भारत चोल और पांड्य राज्यों में विभक्त था और इनके परस्पर संघर्ष में ९९४ सन् में चोल राजा विजयी हुए। चोल-वंश का प्रभुत्व दक्षिण में तीन शताब्दियों तक रहा। चोल राजा महत्वाकांक्षी थे और अपने प्रभुत्व का क्षेत्र उन्होंने मलय, ईस्ट इंडीज़ और लंका तक बढ़ाया। १०१७ सन् में उन्होंने लंका पर विजय पा ली। पोलोन्नरुआ के तत्कालीन राजा को कैद करके उन्होंने दक्षिण भारत में लाकर रखा। ग्यारहवीं से आरंभ होकर सोलहवीं शताब्दी तक तमिलों के हमले लंका पर हमेशा प्रायः लगातार होते रहे।

चोल राजाओं के काल में लंका के बौद्ध धर्म के प्रचार में बाधा पहुँची। इन राजाओं ने लंका में जगह-जगह हिन्दू-मन्दिरों का निर्माण करवाया। इस हिन्दू-राज्य के विरुद्ध जनता में प्रतिरोध की भावना थी। भारत में बन्दी अन्तिम सिंहली राजा के भाई ने इस तमिल-भाषी राज्य के विरुद्ध विद्रोह का नेतृत्व किया और यह संघर्ष १५ वर्ष चलता रहा। अन्त में, १०७० सन् के लगभग विजयबाहु प्रथम के नाम से उसने राज्यपद प्राप्त कर लिया। अपने लम्बे शासन-काल में उसने न्याय-शासन की व्यवस्था में बहुत उन्नति की और बौद्ध-

पोलोन्नरुआ में पराक्रमबाहु की प्रतिमा
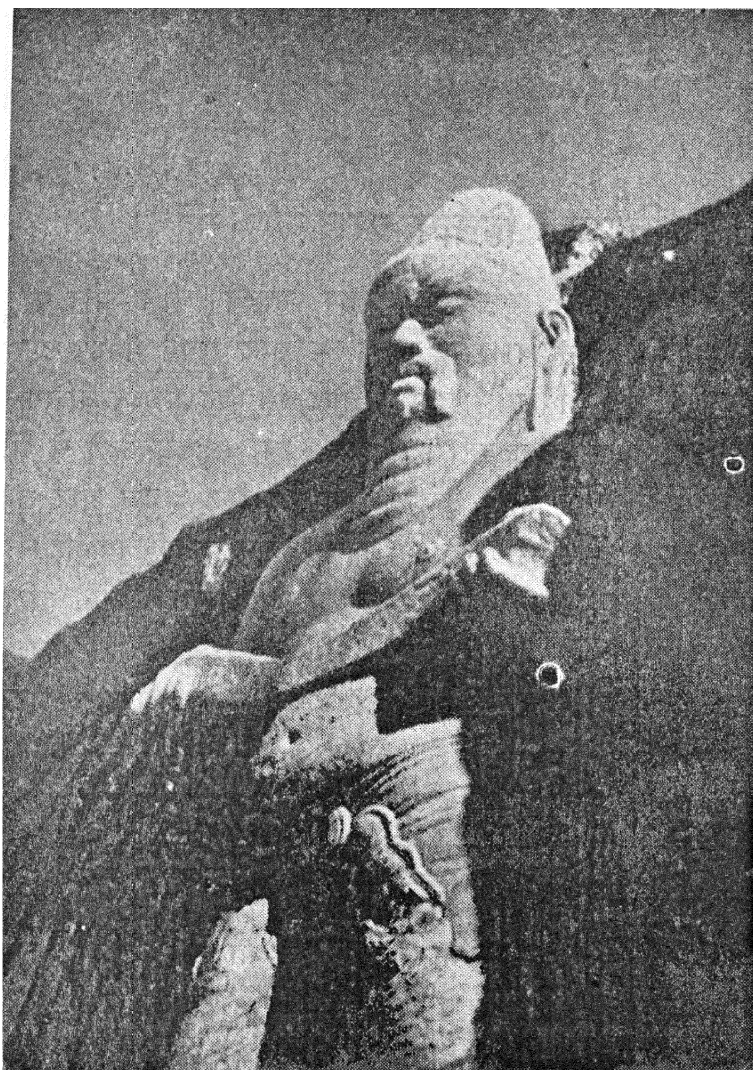
मन्दिरों का उद्धार किया। उसकी साहित्य में रुचि थी, और उसने राज्य-कोष से विधवाओं, अपाहिजों, अनाथों और अन्धों

को धन देने की प्रथा चलाई।

विजयबाहु प्रथम की मृत्यु पर लंका की एकता नष्ट-भ्रष्ट हो गयी, और राज्य अलग-अलग टुकड़ों में बँट गया।

११५३ सन् में लंका के इतिहास में एक महत्वपूर्ण राजा पराक्रमबाहु गद्दी पर बैठा। यह विजयबाहु प्रथम की बहिन का पौत्र था। पराक्रमबाहु बुद्धिमान, महत्वाकांक्षी और चतुर था। उसने खंडित राज्य के सूत्रों को सँभाला, और सबको अपनी छत्रछाया में ले आया। लंका के प्रतिस्पर्धी तमिल-राज्यों और पेगु (बर्मा) के राजा से उसके अनेक युद्ध हुए।

पराक्रमबाहु ने सिंचाई की व्यवस्था में अनेक सुधार किये। शासन, स्वास्थ्य आदि समाज-कल्याण के प्रबंधों की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया। उसके काल में जीर्ण-शीर्ण अनुराधापुर का पुनरुद्धार किया गया और अनेक प्रसिद्ध बौद्ध मन्दिरों और विहारों का निर्माण हुआ। बौद्ध धर्म के दार्शनिक अन्तर्विरोधों के समाधान के लिए उसने विद्वान भिक्कुओं का एक सम्मेलन बुलाया। ११८६ सन् में उसके देहान्त पर लंका का सिंहली राज्य अपने चरम उत्कर्ष पर था।

१२१५ में दक्षिण भारत के माद्य नाम के एक हिन्दू राजा ने लंका का राज्य छीन लिया। उसने जनता पर अत्याचार किये और बौद्ध मन्दिरों को क्षति पहुँचाई। राजावलीय के अनुसार उसका शासन-काल विविध प्रकार के नृशंसतापूर्ण व्यवहारों से भरा हुआ था।

तेरहवीं सदी में लंका का इतिहास काफी अशान्तिपूर्ण रहा। द्वीप प्रायः दो राज्यों में विभक्त हो गया था। उत्तर में जाफना के आसपास तमिल-भाषियों का राज्य था, जिसका

संबंध दक्षिण भारत के हिन्दू-साम्राज्य से प्रायः बना रहता था। सिंहलियों का राज्य समय के साथ लंका की दक्षिण-पश्चिम दिशा में धकेला जाता रहा। अन्त में राजधानी के रूप में पोलोन्नरुआ को त्याग देना इनके लिए आवश्यक हो गया और १६वीं सदी के आरंभ में कोलम्बो के पड़ोस में कोट्टे नाम के स्थान पर इसकी स्थापना की गई।

तमिल-भाषी और सिंहली राज्यों में नित्य का द्वन्द्व बना रहा। सिंहली राजा आक्रमण कर के कभी-कभी उत्तरी प्रान्तों को जीत लेते थे। पराक्रमबाहु द्वितीय ने, जिसका राज्य १२३५ सन् से १२७० सन् तक रहा, पोलोन्नरुआ पर विजय पा ली थी। यदि मलय देश से उसके काल में आक्रमण न हो जाता तो वह सारे लंका का अधिपति बन जाता।

इन्हीं दिनों लंका के विदेशों से अनेक संबंधों के उदाहरण भी मिलते हैं। १२८३ सन् में सिंहली राजा के दूत मिस्र के दरबार में पेश हुए। १२८१ सन् में चीन का राजदूत लंका पहुँचा था और लगभग तभी कुबलाई खाँ का दूत भी।

लगभग १२९४ सन् में प्रसिद्ध घुमक्कड़ मार्कोपोलो कुबलाई खाँ की १७ वर्ष की नौकरी करने के बाद लंका पहुँचा। उसके अनुसार लंका एक स्वतंत्र देश था। उसने तत्कालीन राजा का जो नाम दिया है, वह भारतीय लगता है; शायद वह पांड्य राज्य के लंकास्थित प्रतिनिधि शासक का नाम हो। मार्कोपोलो ने लिखा है कि लोग शरीर के केवल नीचे के भाग को लपेटे रहते हैं। खेतीबारी की मुख्य पैदावार धान और तिल थे। तिल का तेल निकाला जाता था। लोग चावल और मांस खाने के आदी थे और नारियल की बनायी शराब पीते थे।

१३०२ सन् में पराक्रमबाहु द्वितीय के पौत्र ने पांड्य राजा से सन्धि कर लेने का निश्चय किया। इस सन्धि के फल-स्वरूप भारत से वह भगवान बुद्ध के दन्तावशेष को फिर से लंका में वापिस ले आया।

दक्षिण भारत में इस बीच पांड्य साम्राज्य का क्षय हो रहा था, और मुस्लिम राजाओं के शासन का क्षेत्र निरन्तर बढ़ रहा था। लंका के दक्षिणी भाग में सिंहलियों का राज्य फिर से मजबूती से जम गया और उत्तर में जाफ्ना के तमिल राज्य ने अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाये रखी।

१३२१ सन् में फ्रांसिस्कन फ्रायर ओडरिक नाम का पादरी अपनी पूर्व की यात्रा के दौरान में लंका से गुजरा। उसने लंका में पाये जानेवाले अनेक पक्षियों और जानवरों के नाम गिनाये हैं और कीमती जवाहरात के व्यापार का उल्लेख भी किया।

जॉन मेरिग्नोलो ने, जो कि एक कैथॉलिक पादरी था, लंका के तत्कालीन समाज का कुछ विवरण छोड़ा है। वह इस द्वीप के लोगों की सादगी से प्रभावित था; ज्यादातर लोग शाकाहारी थे और केवल लंगोट पहनकर ही पत्तों की झोंपड़ियों में जीवन बिताते थे। सन् १३४४ में मोरक्को-निवासी प्रसिद्ध विश्व-यात्री इब्नबतूता भी लंका में आया था। इब्नबतूता एशिया और अफ्रीका के देशों में ३० वर्ष पर्यन्त घूमा था और फिर लौटकर उसने अपने संस्मरण लिखवाये थे। उसने लंका के उत्तर में पुत्तलम में एक तमिल राज्य का हाल लिखा है। पुत्तलम, उसके अनुसार, एक छोटा-सा कस्बा था जो चारों ओर एक लकड़ी की दीवार से घिरा हुआ था जिसमें लकड़ी

की मीनारें भी स्थानान्तर से निकली हुई थीं। तमिल-भाषी राजा फारसी में भी बातचीत कर सकता था; उसने इब्न-बतूता की आवभगत भी की। उसने समनल की चोटी पर जाकर भगवान् बुद्ध के छोड़े हुए चरण-चिन्ह देखे। सिंहलियों के, उन लोगों के प्रति जो बौद्ध धर्म के अनुयायी नहीं थे, भद्र व्यवहार से इब्नबतूता प्रभावित हुआ। वह लंका के विभिन्न स्थानों, चिलव, डोंड्रा, कुरुनेगला और गॉल, को देखने के लिए भी गया। कोलम्बो को उसने सबसे बड़ा और साफ-सुथरा शहर पाया। शहर के मुख्य अधिकारी ईथियोपिया के ५०० लोग दास या फौजियों के रूप में थे।

१४वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लंका का तमिल राज्य अपनी कीर्ति के शिखर पर था, लेकिन इस छोटे से द्वीप में तमिल और सिंहलियों की दो विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों और भाषाओं के कारण लगातार विग्रह मचा ही रहा। इस अवधि में भारत के अलावा चीन, बर्मा तथा मलय की ओर से भी लंका पर आक्रमण हुए और कुछ ही समय के लिए मिस्र के सुलतान का राज्य भी यहाँ रहा। यूरोप के पर्यटकों और व्यापारियों का ध्यान भी इन्हीं सदियों में लंका की ओर आकर्षित हुआ और चीन तथा जापान की ओर जानेवाले यात्री तथा जहाज लङ्का की बन्दरगाहों में पड़ाव डालने लगे थे।

सन् १४१० में द्वीप के सिंहली राजा को चीन के राजदूत ने पकड़कर चीन भेज दिया था और कुछ वर्षों के लिए चीन का प्रभुत्व यहाँ रहा।

सन् १४६७ में पराक्रमबाहु चतुर्थ के शासन का अन्त हुआ। उसकी राजधानी कोट्टे में थी और उसका राज्य लंका

के सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए प्रसिद्ध है। उसके देहान्त के साथ देश में फिर अशान्ति और दुर्व्यवस्था फैल गयी। जगह-जगह विद्रोह फूटा। कैन्डी पर विद्रोहियों का कब्जा हो गया। १६वीं सदी के आरंभ नें लंका की परिस्थितियाँ ऐसी थीं जो इसे किसी भी विदेशी आक्रमण के आगे झुक जाने के लिए मजबूर कर देतीं।

अब हम ग्यारहवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक के लंका के जीवन पर एक नजर डालें। इस अवधि में जमीन से लगान की वसूली की व्यवस्था काफी जटिल हो गयी। किसानों को लगान के एवज़ में खेती पर मजदूरी करनी पड़ती थी। कुछ क्षेत्रों में वार्षिक पैदावार का दसवाँ हिस्सा कर के रूप में देना पड़ता था। किसी के मरने पर उसके उत्तराधिकारियों से टैक्स लिया जाता था। सड़कों, पुलों, मंदिरों और अमीरों के घरों को ठीक हालत में रखने के लिए बेगार ली जाती थी।

युद्धों के लिए फौजों में भरती स्थानीय लोगों से अकसर की जाती थी और विदेशी भी फौजों में लिये जाते थे। हथियार पुरानी तरह के ही बरते जाते थे।

धार्मिक कर्त्तव्यों की पूर्ति की ओर राजा, अमीर लोग और आम जनता, सभी चिन्तित रहते थे। धर्म और राज्य में घनिष्ठ सम्पर्क था। मन्दिर आदि राजाओं के खर्च से बनवाये जाते थे। इसी काल में बौद्ध धर्म के परम्परागत सिद्धान्तों के प्रति विरोध भाव भी जागा और नये सुधारवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन होने लगा था। यद्यपि लंका के हिन्दू राजा बौद्ध धर्म के लिए सहिष्णुता की भावना रखते थे, पर कई राजाओं ने

बौद्धों के प्रति अत्याचारपूर्ण व्यवहार भी किया, बौद्ध मंदिर गिरवाये और उनकी सम्पत्ति लूटी।

तमिलों के माध्यम से भारतीय जाति-व्यवस्था का लंका के समाज में प्रवेश हो चुका था और इसका प्रभाव बौद्ध समाज पर भी दिखाई देने लगा। लंका के जाति-भेद में उतनी कड़ाई नजर नहीं आती थी जितनी कि भारत में थी। कुछ हिन्दू अवतारों की पूजा भी बौद्ध मन्दिरों में होने लगी थी।

जैसा कि अन्य देशों में, लंका में भी धर्म का प्रभाव उसकी कला और साहित्य पर स्पष्ट रूप से पड़ता था। साधारण जनता इस सांस्कृतिक बोध से असम्पृक्त, अशिक्षित और अन्धविश्वासों में खोयी रहती थी।

६. इतिहास : अन्तिम चरण

सन् १४९८ में प्रसिद्ध पुर्तगाली नाविक वास्को-ड-गामा भारत के कालिकट नगर में पहुँच चुका था। सात वर्ष बाद कुछ पुर्तगाली जहाजों ने समुद्री तूफ़ान से विवश होकर कोलम्बो के तट के पास लंगर डाला। इन जहाजों के कैप्टेन ने व्यापार संबंधी बातचीत के लिए अपने एक प्रतिनिधि को स्थानीय राजा के दरबार में भेजा, जो कि कोलम्बो से ६ मील दूर कोट्टे नाम की राजधानी में लगता था। राजा ने इन पुर्त्त-गालियों को इलायची में व्यापार करने की इजाज़त देकर उनसे यह शर्त मंजूर करवाई कि वे लंका के तट की विदेशी अक्रमण से रक्षा करेंगे, इस घटना से लंका में यूरोप के हमला-वरों के आने का प्रवेश-द्वार खुल गया।

पुर्तगालियों का प्रभुत्व इस समय पूर्व के अनेक देशों में छा रहा था। उन्होंने व्यापार के वहाने हिन्दुस्तान, मलयं, ईस्ट इण्डीज़, चीन और जापान में जगह-जगह अपने पाँव जमा लिये थे। सोलहवीं सदी के प्रायः आरंभ में ही वे सारी लंका पर भी छा गये।

लंका के प्रति उनका झुकाव इस द्वीप में पाये जानेवाले मसालों और जवाहरात के कारण ही नहीं था; लंका की भौगोलिक स्थिति भी ऐसी थी कि उसे पूर्व-भर में फैलने को उत्सुक किसी

भी साम्राज्य को हथियाने का मोह हो सकता था।

पुर्तगालियों ने और उसके बाद हालैंडवासियों और अंग्रेजों ने भी अपने राज्य और प्रभाव की सीमाओं को बढ़ाने की एक-समान नीति ही बरती। द्वीप के आंतरिक संघर्ष में व्यापार की सुविधाओं को लेने के परिवर्तन में वह एक पक्ष को सुरक्षा का आश्वासन देते थे, और किलों का निर्माण कर अपनी फौजें उन में रखने का अधिकार पा लेते थे। अपनी सहूलियत और मौके की माँग के अनुसार वे अपना संरक्षत्व विपक्षी को भी दे सकते थे। छोटे-छोटे राजाओं के अथवा उनके विद्रोहियों के साथ उनकी कूटनीतिक मंत्रणाएँ चलती रहती थीं। उनके अफ़सर भ्रष्ट थे और घूस लेने के लिए प्रसिद्ध थे। पुर्तगालियों ने लंका में रोमन-कैथोलिक धर्म के प्रचार के लिए क्रूर दमन से काम लिया।

सन् १५१७ में पुर्तगालियों का राजदूत सिंहली राजा के दरबार में भी पेश हुआ और उसने मुसलमानों के प्रति अपनी अबाध घृणा व्यक्त की। उसने कहा कि मुसलमानों के प्रभाव को रोकने के लिए ही वे लोग पूर्व में आये हैं, और कोलम्बो में इसी उद्देश्य से एक किले के निर्माण की इजाजत चाही, जिसमें पुर्तगाली फौज रह सके। अभी सिंहली राजा से यह बातचीत चल ही रही थी कि कोलम्बो में दंगा हो गया। पुर्तगाली फौज के सिपाहियों ने जहाजों से आकर कोलम्बो को अपने अधिकार में ले लिया, शहर में आग लगा दी और किला बनाना शुरू कर दिया। पुर्तगालियों ने तब सिंहली राजा को पुर्तगाली सम्राट् की अधीनता स्वीकार कर लेने की चुनौती भेजी। सन्धि हो जाने पर पुर्तगाली फौज की एक टुकड़ी कोलम्बो में टिक गयी।

स्थानीय राजाओं और राज्य-सिंहासन के दावेदारों की परस्पर ईर्ष्या और द्वेष से पुर्तगाली लगातार लाभ उठाते रहे और उनके प्रभाव का क्षेत्र लंका में बढ़ता गया। गद्दी पर पुर्तगालियों की कृपादृष्टि से आनेवाले राजाओं की कहानी ही इस समय का इतिहास है। सन् १५३८ में राज्य के अधिकारी मायादुन्ने को हटाकर पुर्तगालियों ने धर्मपाल नाम के बालक को गद्दी पर बैठा दिया। धर्मपाल उनके हाथ की कठपुतली था। सन् १५५७ में बड़ा होने पर पुर्तगालियों ने राजा और रानी को बलात् ईसाई धर्म स्वीकार करने पर विवश किया। राजा और रानी के नये नाम डॉन जॉन तथा डॉना कैथरिना रखे गये। धर्मपाल और उसकी प्रजा में इससे किसी प्रकार का भावनात्मक सम्बन्ध नहीं रहा। मायादुन्ने ने अब फिर से विद्रोह को संगठित किया और अपने को सीतावाका नाम के स्थान पर जमा लिया। उसका उत्तराधिकारी राजसिंह भी पुर्तगालियों पर हमले करता रहा और सन् १५८१ में कोलम्बो और कुछ उत्तरी भागों को छोड़कर सारी लंका उसके अधीन हो गयी। धर्मपाल ने कोलम्बो के पुर्तगाली किले में शरण ली हुई थी और उसने अपनी वसीयत में पुर्तगाल के राजा फिलिप के उत्तराधिकारी होने का उल्लेख कर दिया।

राजसिंह कोलम्बो के किले पर विजय नहीं पा सका। १५६३ में उसकी मृत्यु हो गयी। यूरोपवासियों के बढ़ते हुए प्रभाव के विरुद्ध जम के लड़नेवाला लंका का वह अंतिम राजा था।

पुर्तगालियों ने अब कैन्डी की ओर अपनी दृष्टि फेरी। उनकी फौज के वहाँ पहुँचने पर उन्हें शहर खाली मिला।

उन्होंने एक सिंहल राजकुमारी को गद्दी पर बैठा दिया; उनका विचार उसका विवाह बाद में किसी पुर्तगाली बड़े आदमी से कर देने का था। इस समय राजधानी को खाली छोड़कर भागे हुए राजा ने वहाँ फिर हमला किया और विजयी हुआ। राजकुमारी से इस राजा ने, जो राजसिंह का पौत्र था, विवाह कर लिया।

धर्मपाल की मृत्यु कोलम्बो में सन् १५६७ में हुई और पुर्तगाल के फिलिप ने वहाँ का शासन अपने प्रतिनिधियों की मार्फत सँभाल लिया ! प्रमुख सिंहली व्यक्तियों ने मलवाना नाम के स्थान पर इकट्ठे होकर फिलिप के प्रति राज्यभक्ति की शपथ ली।

१५६७ में हॉलैन्डवासी व्यापारियों ने जावा में अपना पहला अड्डा स्थापित किया। उनके जहाज भी लंका के तटों के पास आने लगे। उनके प्रतिनिधि कैन्डी के राज्य-दरबार में पहुँचे और कैन्डी का राजा उनसे प्रभावित हुआ।

हॉलैन्ड के व्यापारी पुर्तगालियों के पूर्व के व्यापार के एकाधिपत्य को नाश करने पर तुले हुए थे। उन्होंने कैन्डी के राजा से संधि कर ली; कैन्डी के राजा पुर्तगालियों के विरुद्ध अभी तक संघर्षरत थे।

सन् १६१२ में सेनारत ने, जो कैन्डी का तब राजा था, हॉलैन्ड वासियों से एक नयी संधि की जो कि मुख्यतया पुर्तगालियों के विरुद्ध थी। डच लोगों को कोट्टीयार नाम के स्थान पर किला बनाने की इजाजत दी गयी, उन्हें साथ में इलायची, जवाहरात और मोतियों में व्यापार करने की अनुमति भी मिली। सिंहलियों की युद्ध-समिति में हॉलैन्ड-वासियों के दो प्रतिनिधि भी लिये गये।

पुर्तगाली अपने शासन और प्रभुत्व काल की अवनति के दिनों में नृशंसता पर उतर आये थे। साल में प्राय. दो बार वे बड़े पैमाने पर लूट-मार मचाते थे। वे नवयुवकों को मार देते थे और स्त्रियों को वेश्यालयों में भेज देते थे। बच्चों को दास बनने के लिए बेच दिया जाता था।

सेनारत और उसके उत्तराधिकारी राजसिंह द्वितीय से पुर्तगालियों का झगड़ा चलता रहा। राजसिंह द्वितीय ने हॉलैन्डवासियों से फौजी सहायता प्राप्त करके १६३८ में पुर्तगालियों पर हमला कर दिया। इस वर्ष वह बेट्टीकलो पर विजयी हुआ; १६३९ में त्रिंकोमल्ली और १६४० में गॉल भी उसके कब्जे में आ गये। पुर्तगालियों के विरुद्ध डच लोगों से एक नयी संधि के फलस्वरूप फौजी सहायता के बदले लंका का विदेशी व्यापार उन्हें सौंप दिया गया।

इस प्रकार पुर्तगाली प्रभाव के क्षय के साथ-साथ डच लोगों और सिंहली राजाओं में संबंध घना होता गया। लेकिन डच लोग केवल व्यापारी एकाधिकार पाकर ही सन्तुष्ट नहीं रहे; वे अब लंका में प्रभुत्व जमाने के सपने भी देखने लगे, और इसको लेकर परस्पर संघर्ष भी होने लगा।

यूरोप में पुर्तगाल और हॉलैन्ड के बीच सन् १६५२ में फिर युद्ध छिड़ गया था। डच लोगों का पुर्तगाली फौज के सामने टिकना कठिन हो रहा था, लेकिन सन् १६५५ में उन्हें और कुमक आ मिली। ६ महीने के घेरे के बाद कोलम्बो का पुर्तगाली किला गिर गया और इस प्रकार लगभग डेढ़ शताब्दी के पुर्तगाली शासन और प्रभाव का लंका से अन्त हो गया।

एक विदेशी इतिहासकार ने पुर्तगाली शासन के इस काल

के लिए लिखा है कि "यूरोपवासियों के अन्य देशों को अपने कब्जे में लाने के सारे इतिहास में लंका में पुर्तगालियों के दुष्कृत्यों की कहानी से बढ़कर इतना हेय और घृणित प्रसंग नहीं मिलता।" लंका की कमजोर आंतरिक परिस्थितियों के कारण ही पुर्तगाली लंका में कदम रख सके थे, लेकिन उन्होंने इन परिस्थितियों को सुधारने का कोई प्रयत्न नहीं किया। उनके धर्म-प्रचारकों ने निःशुल्क शिक्षा की ओर पहले कदम जरूर उठाये, लेकिन लोगों को ईसाई बनाने में अत्यधिक बर्बरता से काम लिया गया। पुर्तगाली काल में लंका की खेतीबारी में कुछ नये तरीके अपनाये गये और कुछ नये पौधे भी विदेशों से लाकर यहाँ लगाये गये।

हॉलैन्डवासियों का प्रभुत्व लंका में सन् १६५८ से सन् १७६५ तक रहा। डच लोगों का लंका के लोगों के प्रति व्यवहार पुर्तगालियों से भिन्न था। उन्होंने फैली हुई दुरवस्था को सँभालने के प्रयत्न किये। फौजों से निकले हुए सिपाहियों में जमीनें बाँटने की प्रथा भी उन्होंने फिर से चलाई। दक्षिण भारत से खरीदे हुए तमिल-भाषी दासों को चावल की खेती के काम पर लगाया गया। उन्होंने सिंचाई के प्रबन्ध की पुनर्व्यवस्था की और लगान निश्चित नियमों के अनुसार इकट्ठा किया जाने लगा। रोम तथा हॉलैन्ड की विधि-व्यवस्था के अनुसार कानून का पुनरायोजन किया गया।

हॉलैन्ड के अनेक निवासी, जो बर्घर के नाम से पुकारे जाते थे, लंका में बसने लगे। वे स्थानीय स्त्रियों से विवाह करके यहीं पर व्यापार किया करते थे। बाद में ऐसी शादियों पर सन् १६६५ में रोक लगा दी गयी।

राजसिंह का अधिक विश्वास डच लोगों पर नहीं था, और वह लंका के भीतरी भागों की तरफ हटता चला गया। डच लोग उसे प्रसन्न करने के लिए, उसके दरबार में तोहफ़े भेजा करते थे। १६५४ में उसके राज्य में विद्रोह मचा। राजसिंह ने इस विद्रोह को दबाने से लिए हॉलैंडवासियों की मदद चाही। डच फौजों ने १६६५ में त्रिकोमल्ली और बेट्टीकलो, १६६७ में कलपिटिया, १६६८ में कोट्टियार में विद्रोहियों को दबा दिया। इस सहायता के बावजूद राजसिंह हॉलैंडवासियों के विरुद्ध संशयपूर्ण रहा और भारत की ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी तथा फ्रांसीसियों से सम्पर्क स्थापित करने की कोशिश करता रहा। १६८७ में राजसिंह की मृत्यु हो गयी। कैन्डी पर उसने ५८ वर्ष तक राज्य किया था। वह निरंकुश प्रकृति का राजा था, लेकिन अपने व्यक्तिगत जीवन में सहिष्णु और उदार था। धार्मिक कृत्यों की ओर उसका झुकाव अधिक नहीं था।

राजसिंह की मृत्यु के बाद के राज़ा की प्रकृति भिन्न प्रकार की थी। उसने डचवासियों को विदेशी व्यापार के पूरे अधिकार दे दिये। १७०७ में उसकी मृत्य पर १७ वर्ष का एक अल्पवयस्क युवक गद्दी पर आया। इसका शासनकाल ३० वर्ष तक रहा और इस अवधि में डच लोगों से बहुत मधुर सम्बन्ध बने रहे।

१७२६ में नये नियुक्त डच गवर्नर का नाम पेट्रस वुइस्ट था; वुइस्ट बड़ा अत्याचारी सिद्ध हुआ और उसने अपने काल में बहुत क्रूर दमन किया, जिससे पुर्तगाली शासन के दिनों की याद ताजा हो आई। हॉलैंड लौटने पर उस पर मुकदमा चलाया गया।

सन् १७३६ में राजा की मृत्यु हो गयी। लंका में राज्य करनेवाला वह अन्तिम सिंहली राजा था। उसके कोई पुत्र नहीं था; पत्नी भारत की एक मालाबारी स्त्री थी। परिणाम-स्वरूप उसका तमिल-भाषी कीर्तिश्री नाम का साला गद्दी पर बैठा। उसने भी एक तमिल-भाषी स्त्री से विवाह किया।

इस समय डच लोगों के कैन्डी के राज्य से सम्बन्ध फिर से बिगड़े। राजा के मालाबारी सम्बन्धी बड़े पैमाने पर बिना कर दिये लंका में आयात कर रहे थे। डच गवर्नर ने इचायची के खेतों पर कब्जा कर लिया। कीर्तिश्री ने डच लोगों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। उसने हॉलैंडवासियों के विरुद्ध मद्रास में स्थित अंग्रेजों से मदद माँगी जिसका कोई फल नहीं निकला। हॉलैंडवासियों ने १७६५ में कीर्तिश्री की राजधानी पर कब्जा कर लिया, लेकिन कैन्डी को नहीं जीत सके। १७६६ में उन-में सन्धि हो गयी और कैन्डी को किसी प्रकार के विदेशी सम्पर्क से अलग-थलग कर दिया गया।

हॉलैंड के लंका में प्रभुत्व का काल १८१५ में खत्म हुआ लेकिन अंग्रेजों के प्रभुत्व के बीज १७६२ में ही पड़ गये थे जब कि कीर्तिश्री ने उनसे फौजी सहायता की माँग की थी। अंग्रेजी नौसेना के पास भारतीय महासागर की बंगाल की खाड़ी में कोई अड्डा नहीं था और उन्होंने लंका के त्रिकोमल्ली पर नजर लगा रखी थी। अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में न केवल यूरोप में बल्कि पूर्व के देशों में प्रभुत्व के लिए होड़ चल रही थी। अंग्रेज व्यापारी पूर्व के साथ व्यापार में हिस्सा भी बँटाना चाहते थे जिस पर कि उन दिनों पुर्तगाली, फ्रांसीसी तथा डच लोग हावी हो रहे थे।

कीर्तिश्री की माँग पर अंग्रेजों की मद्रास कौंसिल के एक सदस्य जॉन पाइबस की मुलाकात भी हुई, लेकिन उस समय अंग्रेजों ने डचवासियों के विरुद्ध कोई मदद देना उचित नहीं समझा।

अमेरिका के स्वतंत्रता-संग्राम की समाप्ति के दिनों हॉलैंड ने ब्रिटेन का विरोध करनेवाले गुट का साथ दिया था। तब मद्रास के गवर्नर ने लंका पर चढ़ाई करने का फैसला किया। १७८२ में त्रिकोमल्ली अंग्रेजों के हाथ में आ गया। अंग्रेजों का ह्यूघ बॉयड नाम का राजदूत इसके बाद कैन्डी के दरबार में पहुँचा। कीर्तिश्री का भाई तब तक गद्दी पर बैठ चुका था। उसने अंग्रेजों से मित्रता की संधि कर ली।

त्रिकोमल्ली १७८२ में फ्रांसीसियों द्वारा जीत लिया गया और हॉलैंडवासियों को लौटा दिया गया। अगले १२ वर्षों में इस ओर अंग्रेजों ने कोई ध्यान नहीं दिया। १७९३ में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में यूरोप में लड़ाई छिड़ गयी। फ्रांसीसी सेनाओं ने हॉलैंड पर भी हमला कर दिया। हॉलैंड के प्रिंस ऑफ आरेन्ज ने इङ्गलैंड में आकर अपनी विस्थापित सरकार का आयोजन किया और लंका के डच गवर्नर को अंग्रेजों से मिल-जुलकर काम करने का आदेश दिया। डच गवर्नर ने जब ऐसा नहीं किया तो अंग्रेजों ने ताकत का इस्तेमाल किया। १७९५ में उन्होंने बलप्रयोग से त्रिकोमल्ली पर कब्जा कर लिया और उसी वर्ष जाफ्ना भी उनके हाथों में आ गया। फरवरी १७९६ में कोलम्बो पर भी उन्होंने विजय पा ली।

इस प्रकार प्रायः बिना विशेष बल की सहायता अथवा लड़ाई के लंका को जीत लिया गया। भारत का अंग्रेजी शासन

ही इस द्वीप पर हुकूमत करने लगा क्योंकि भारतीय सैनिकों की मदद से ही उन्हें यह विजय प्राप्त हुई थी।

१७९८ में आनरेबल फ्रेडरिक नॉर्थ को लंका का गवर्नर नियुक्त किया गया। उसने सरकारी नौकरियों में सिंहलियों को भरती करना आरंभ किया। अनेक भ्रष्टाचारी अंग्रेज अफसरों को उसने नौकरी से निकाल दिया। उसी ने १८०० में लगान-वसूली की नयी व्यवस्था द्वीप में चालू की, और कानून को नये सिरे से दुहराया गया। नार्थ के काल में शिक्षा की व्यवस्था का पुनर्संगठन किया गया; १८०१ में लंका में १७० स्कूल थे। १८१२ में लंका को ब्रिटिश साम्राज्य के एक उप-निवेश के रूप में घोषित किया गया। कानून बनाने और राज्य चलाने के सब अधिकार गवर्नर में निहित किये गये। उसे मंत्रणा देने के लिए सलाहकार समिति भी बनायी गयी लेकिन उसकी सलाह को ठुकरा देने का गवर्नर को अधिकार प्राप्त था।

इस बीच कैन्डी ने अपनी स्वतंत्रता बरकरार रखी थी। बिना किसी जायज़ उत्तराधिकारी को छोड़े हुए १७९८ में उसके राजा की मृत्यु हो गयी थी। उसका सर्वोच्च आदिगार, जो कि प्रधान मंत्री का नाम था, पिलम तलव्व नाम का कैंडी के एक बड़े घराने का शक्तिशाली व्यक्ति था। उसने श्रीविक्रम राजसिंह के नाम से एक कमजोर राजकुमार को गद्दी पर बैठा दिया और राजघराने के शेष व्यक्तियों को बन्दी कर लिया। राजघराने के एक बहनोई ने भाग कर अंग्रजों के पास शरण ली।

पिलम तलव्व ने अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई जारी रखी।

कैन्डी पर अंग्रेजी फौजों ने मुत्तसामी नाम के व्यक्ति को गद्दी पर बैठा दिया था; पिलम तलव्व ने कैन्डी पर हमला करके उसे जीत लिया।

१८०५ में सर टामस मेटलैंड लंका के गवर्नर होकर आए। उन्होंने कैन्डी में स्थित पिलम तलव्व की उपेक्षा की। बिना किसी प्रकार की सन्धि हुए इस प्रकार लड़ाई समाप्त हो गयी। लेकिन अगले गवर्नर सर रॉबर्ट ब्राउनिंग ने कैन्डी में बिना किसी प्रकार के विरोध के १८१५ में प्रवेश किया। कैन्डी भी तब अंग्रेजों के कब्जे में आ गया।

धीमे-धीमे अंग्रेजी राज्य की नीवें मजबूत होती गयीं। विभिन्न प्रकार के गवर्नरों ने अनेक प्रकार के सुधारों की योजनाएँ बनायीं और कार्यान्वित कीं। उनके शासन काल में, विशेषतः कैन्डी में, अनेक विद्रोह भी भड़के, लेकिन वे आसानी से दबा दिये जा सके, क्योंकि उनका उद्देश्य और उनमें सहायक लोगों की संख्या काफी सीमित होती थी। सबसे अधिक गंभीर विद्रोह १९४८ का था जिसका नेतृत्व बौद्ध भिक्कुओं ने किया था।

१९वीं सदी के उत्तरार्ध में कॉफ़ी के बगीचे लगाने की जैसे होड़-सी मच गयी। इसकी शुरूवात १८५० में कोलम्बो से कैन्डी तक रेल की लाइन बिछ जाने के साथ हुई। उपयुक्त जमीन के भाव बहुत बढ़ गये और जंगल के जंगल इस उद्देश्य से काट दिये गये।

लंका की कृषि की स्थिति इन दिनों बहुत विषम थी। अपने खाने-पीने के सामान के लिए इससे पहले यह द्वीप आत्मनिर्भर था, अब इसके आयात की आवश्यकता महसूस होने

लगी। सिंहली राजाओं के वक्त की सिंचाई की व्यवस्था तहस-नहस हो चुकी थी। अंग्रेज़ों ने ग्रामों में पंचायतों पर नये सिरे से नहरों की देखभाल का दायित्व डाल दिया।

१८६० में सीलोन लीग की स्थापना हुई जिसका मुख्य उद्देश्य तत्कालीन विधान सभा में गैर-सरकारी सदस्यों के लिए बहुमत प्राप्त करना था।

१८७२ में नगर-पालिकाओं की स्थापना की गई। अनेक स्कूल भी खोले गये। इन दिनों वहाँ २०० सरकारी स्कूल थे जिनमें विद्यार्थियों की संख्या १०,००० थी। ईसाइयों की विभिन्न समितियों द्वारा ४०० स्कूल अलग से चलाये जाते थे, जिनमें विद्यार्थियों की संख्या २५,००० थी।

१८६८ में कॉफ़ी के बगीचों में एक ऐसी बीमारी फैली जिसकी रोकथाम नहीं की जा सकी और कॉफ़ी का बड़ा उद्योग एकबारगी नष्ट हो गया। इधर चाय के और सिनकोना के, जिससे क्यूनीन बनायी जाती है, बगीचे लगाने की ओर भी लोगों का ध्यान गया।

१८७३ में कोलम्बो में अप्राकृतिक बन्दरगाह का निर्माण आरंभ हुआ। १८७७ से १९१८ तक का काल अंग्रेजी राज्य की सफलताओं के स्पष्टीकरण का समय था। सिंचाई की व्यवस्था, सार्वजनिक सड़को के निर्माण, रेलवे, टेलिग्राफ आदि अन्य सामाजिक उपयोगिताओं को इस अवधि में सुलभ किया गया। फौजदारी के कानून का नया पंजीबंधन हुआ।

१८७६ में रबर की खेतीबारी की लंका में शुरूआत की गयी थी; १८९६ में इसमें विशेष वृद्धि की ओर ध्यान दिया जाने लगा। इस वर्ष १००० से भी कम एकड़ जमीन

पर रबर के पेड़ लगाये गये थे; १९०३ में रबर की खेती ११,००० एकड़ों में होने लगी। नारियल का निर्यात भी इस
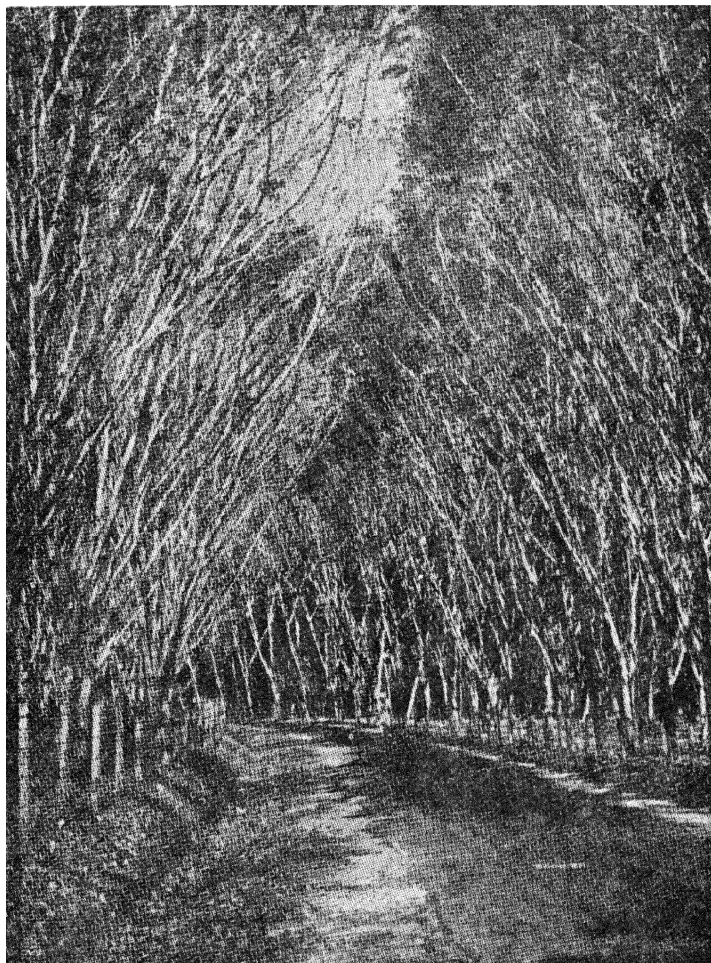
रबर के वृक्षों के एक बड़े बगीचे का दृश्य

बीच आरंभ हो गया था। इन बगीचों के लिए दक्षिण भारत से मजदूर आया करते थे; उन्हें और भी प्रोत्साहन देने के लिए

टैक्स सम्बन्धी अनेक रियायतें दी गयीं। रबर की खेती १९०७ में १,५०,००० एकड़ों तक पहुँच गयी।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ में राजनीतिक सुधारों की माँग तेजी पकड़ गयी। शिक्षा के परिणामस्वरूप एक नये खुशहाल सिंहली मध्यवर्ग का उदय हो रहा था; वे अब राजनीतिक मामलों में दिलचस्पी लेने लगे। लंका की तत्कालीन राजनीतिक माँग के पीछे पड़ोस के भारत में अंग्रेजों द्वारा कार्यान्वित राजनीतिक सुधारों से परिचय भी था। जपान द्वारा रूस की पराजय ने भी एशिया के प्रायः सभी देशों की जनता को स्वाभिमान की एक नयी दृष्टि प्रदान की थी।

आरंभ में अंग्रेजों ने जो राजनीतिक सुविधाएँ देना स्वीकार किया वे उदार और प्रभावोत्पादक नहीं थीं।

विधान निर्मातृ समितियों में चुने हुए प्रतिनिधियों की संख्या को कुछ बढ़ा देने से संतोष नहीं हो सकता था जब कि उन्हें बहुमत प्राप्त नहीं होता। १९१५ में भारत की तरह लंका में भी राजनीतिक दंगे होने लगे और उन्हें दबाने को फौजी हुकूमत कायम कर दी गयी। १९१७ में देश में एकाधिक राजनीतिक संस्थाओं का संगठन हुआ। इस प्रकार प्रथम महायुद्ध के दौरान में लंका में राजनीतिक सुधारों के लिए जोर से अवाज लगायी गयी। भारत के सेक्रेटरी आफ स्टेट द्वारा लन्दन में की गयी घोषणा, 'कि भारत में अंग्रेजी राज्य का उद्देश्य क्रमशः उत्तरदायी शासन को कायम करना है' लंका के उपनिवेश के मामले में भी लागू मानी गयी। फिर भी स्वतंत्रता का संग्राम एक पीढ़ी तक चला। यह संग्राम १९१८ में आरंभ होकर १९४८ में ही समाप्त हुआ। १९१९ में भारत के

अनुरूप सीलोन नैशनल कांग्रेस की स्थापना भी हुई।

लंका की स्वतंत्रता की लड़ाई के समय को तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है: (१) १९१८ से १९३१ तक, जब कि स्थानीय शासन का ढाँचा यथापूर्व बना रहा। इन दिनों में एक लेजिस्लेटिव कौंसिल थी जिसमें निर्वाचित सदस्यों को१९१० से बहुमत प्राप्त था लेकिन जिसके निर्णयों की गवर्नर उपेक्षा कर सकता था; (२) १९३१ से १९४६ जब कि शासन की ओर कानून बनाने की शक्तियाँ एक निर्वाचित स्टेट कौंसिल में निहित कर दी गयीं, और (३) १९४६ से शुरू होनेवाला काल जब कि दो विभिन्न विधान सभाओं के समक्ष उत्तरदायी मंत्रीमंडल द्वारा राज्य-शासन का कार्य आरंभ हुआ।

१९२९ में लंका में वयस्क मताधिकार का सिद्धान्त मान लिया गया था जो कि एशिया के किसी भी देश में सर्वप्रथम हुआ।

लंका के प्रथम प्रधान मंत्री का नाम श्री डी० एस० सेनानायके था जो कि युनाइटेड नैशनल पार्टी के नेता थे, जिसे प्रथम आम चुनावों में विजय मिली थी।

सीलोन इंडिपेन्डेन्स बिल इंग्लैंड की पार्लमेंट के सम्मुख १३ नवम्बर १९४७ को पेश किया गया था और चार सप्ताह बाद स्वीकृत कर लिया गया था। इस ऐक्ट द्वारा लंका को पूर्ण स्वतंत्रता देने की घोषणा कर दी गयी।

◆